श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला पु० नं० १५२

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर पाद पद्मेभ्यो नमः

ओसवालोत्पत्ति विषयक

शङ्काओं का समाधान

卐

लेखक

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला

मु० फलोदी (मारवाड़)

ओसवाल संवत् २३९२

वीर सं० २४६२ | ईस्वी सन् १९३५ | विक्रम सं० १९९२

मूल्य पठन पाठन और सदुपयोग

नथमल लूणिया द्वारा आदर्श प्रेस केसरगञ्ज अजमेर में छपी ।

बिजली से चलनेवाले इस बड़ेभारी प्रेस में छपाई का काम बहुत उमदा सस्ता और जल्दी होता है । ओसवाल बन्धुओं से निवेदन है कि वे अपनी छपाई का सब काम इस स्वजातीय प्रेस में ही भेजने की कृपा करें–

संचालक—जीतमल लूणिया

दो शब्द

जैनधर्म यह किसी समाज, जाति और व्यक्ति विशेष का धर्म नहीं है पर सम्पूर्ण विश्व का धर्म है। इस धर्म का मूल सिद्धान्त स्याद्वाद् और अहिंसा विश्व व्यापी है। जिस समय वर्ण व्यवस्था कायम हुई उस समय जैनधर्म के उपासक चारों वर्ण थे। कालान्तर वर्ण व्यवस्था में कई प्रकार का विकार पैदा हुआ—जातियां, उपजातियां और अहंपद अर्थात् उच्च नीचत्व का जहरीला विष सर्वत्र उगला जाने लगा। ठीक उसी समय भगवान् महावीर ने जनता के टूटे हुए शक्ति तन्तुओं का संगठन कर समभावी बनाये और धर्माराधन का अधिकार प्राणि मात्र को देकर उनके लिये मोक्ष मार्ग खुला कर दिया—महाराज चेटक, श्रेणिक, उदायी आदि क्षत्रिय, इन्द्रभूति, अग्निभूति, ऋषभदत्त, भृगु आदि ब्राह्मण; आनन्द कामदेव, शंख, पोक्खली आदि वैश्य, हरकेशी, मैतार्यादि शूद्र, एवं चारों वर्ण भगवान् महावीर के उपासक थे। शुद्धि की मिशन खूब रफ्तार से चलने लगी और लाखों नहीं पर करोड़ों भव्य प्रभु महावीर के झंडे के नीचे शान्ति पाने लगे। यह शुद्ध और सुगन्धी वायु महावीर निर्वाण के करीबन ३०-४० वर्ष बाद मरुधर तक पहुँचा, आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर व पद्मावती नगरी में लाखों मनुष्यों की शुद्धि कर जैनधर्म में दीक्षित किया। बाद वीरात् ७० वें वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में लाखों अजैनों को जैन बनाये जिसके उल्लेख पूर्वाचार्य रचित प्राचीन ग्रन्थों में आज भी विद्यमान हैं। इस बात को लक्ष में रख कर ही इस किताब के लिखने में प्रयत्न किया है। पाठकवर्ग इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर लाभ उठावेंगे तो मैं मेरे परिश्रम को सफल हुआ समझूंगा।

इत्यालम्।

"ज्ञानसुन्दर"

श्री रत्नप्रभसूरि सद्गुरुभ्यो नमः

प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

(छट्ठा भाग)

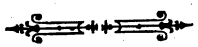

(ओसवालोत्पत्ति विषयक)

शंकाओं का समाधान

उपकेश वंश अर्थात् ओसवाल वंशोत्पत्ति का समय निर्णय करना एक जटिल समस्या है। क्योंकि इस विषय के निर्णय के लिए जितने साधन चाहिए उतने आज उपलब्ध नहीं हैं केवल इसके लिए ही नहीं पर भारतीय किसी भी विषय के इतिहास लिखने में ये ही बाधाएँ सर्व प्रथम आ उपस्थित होती हैं। इसका ख़ास कारण गत शताब्दियों में मुस्लिम शासन का महान् अत्याचार और धर्मान्धता ही है क्योंकि उन्होंने भारतीय इतिहास के प्रधान साधनों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने कई एक पुस्तक-भण्डार यों के यों जला दिये, असंख्य मन्दिर मूर्त्तिएँ तोड़ डालीं सैकड़ों शिलालेख व कीर्त्तिस्तम्भ बर्बाद कर दिए एवं जनता के धार्मिक अधिकारों पर साङ्घातिक चोट कर जनता में चिर अशान्ति का बीजा रोपण किया गया इस तरह पूर्व लिखित इतिहास को नष्ट कर भविष्य में भी उसे सिलसिलेवार लिखे जाने से रोक रक्खा, फिर भी जो कोई साधन इतस्ततः विखरे हुए शेष रह गए उनमें भी अधिकांश उनके जीर्णोद्धार करते समय विशेष लक्ष्य न देने से लुप्त प्राय होगए—अन्ततोगत्वा जो कुछ भी आज ऐतिहासिकों के हाथ लगा है उन्हीं पर

प्रत्येक पदार्थ के इतिहास की आधार भित्ति ज्यों त्यों कर खड़ी की जाती है। इधर और भी पौर्वात्य और पाश्चात्य पुरातत्वज्ञों एवं संशोधकों की शोध और खोज से इतिहास की बहुत कुछ सामग्री प्राप्त हुई है, यद्यपि वह अपर्याप्त है तथापि इतिहास क्षेत्र पर अच्छा प्रकाश डाल रही है। जैसे कि—

एक समय भगवान् महावीर को ऐतिहासिक महापुरुष मानने में विद्वत्समाज हिचकिचाता था, पर आज भगवान् महावीर को ही नहीं किन्तु प्रभु पार्श्वनाथ को भी ऐतिहासिक महापुरुष एक ही आवाज से स्वीकार करता है। इतना ही नहीं परन्तु हाल ही में काठियावाड़ प्रान्त में मिला हुआ एक ताम्रपत्र ने तो भगवान् नेमिनाथ को भी ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध कर दिया है जो श्रीकृष्ण और अर्जुन के समकालीन जैनों के बावीसवें तीर्थंकर थे।

इसी भाँति मौर्य सम्राट् चंद्रगुप्त भी इतिहास-प्रमाणों से जैन सिद्ध हो चुके हैं और जिस सम्प्रति को लोग काल्पनिक व्यक्ति कहते थे, आज इतिहास की कसौटी पर कसने से एक जैन सम्राट् प्रमाणित हुए हैं यही क्यों ? किन्तु जो शिलालेख, स्तंभलेख एवं आज्ञापत्र आदि आज तक सम्राट् अशोक के माने जाते थे उन सब लेखों को डाक्टर त्रिभुवनदास लेहरचंद ने अकाट्य इतिहास प्रमाणों द्वारा सम्राट् सम्प्रति का सिद्ध कर दिया है। इस विषय पर नागरी-प्रचारिणी त्रैमासिक-पत्रिका वर्ष १६ के प्रथम अङ्क में उज्जैननिवासी श्रीमान् सूर्यनारायणजी व्यास ने भी लेख लिखकर प्रकाश डाला है। और उन्होंने उसमें यह सिद्ध कर बतलाया है कि जो शिलालेख, स्तम्भलेख, आज्ञापत्र आदि सम्राट् अशोक के माने जा रहे हैं वास्तव में वे सब (लेखादि) सम्राट् सम्प्रति के हैं। इसी तरह कलिंगपति महामेघवहान चक्रवर्ती महाराजा खारबोल का नाम अब से पहिले जैन साहित्य में तो क्या ? परन्तु संसार भर के साहित्य में नहीं पाया जाता था पर उड़ीसा की हस्तीगुफा के लेख ने यह स्पष्ट कर दिया किराजा खारबोल जैन धर्म का उपासक ही नहीं किन्तु कट्टर प्रचारक था। इसी प्रकार कई लोगों का खयाल था कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति विक्रम की दशमीं शताब्दी के आस पास हुई थी, पर आज इतिहास के साधनों एवं

कोटा स्टेट के अन्तर्गत अटारू नामक ग्राम का वि० सं० ५०८ का शिलालेख जो इतिहासज्ञ मुन्शी देवीप्रसादजो की शोध से प्राप्त हुआ उसका आपने "राजपूताना की शोध खोज" नामक पुस्तक में भी उल्लेख किया है इनसे और अन्य साधनों से ओसवालों का उत्पत्ति समय विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी स्थिर होता है, तात्पर्य यह है कि ज्यों ज्यों शोध कार्य होता रहेगा त्यों त्यों इतिहास पर प्रकाश पड़ता जायगा। इसीलिए विद्वानों का कहना है कि किसी लेखक को हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं; वे अपना कार्य सोत्साह करते रहें।

"मेरा जन्म ओसवाल जाति में हुआ, अतः मुझे ओसवाल जाति एवं जैन-धर्म का गर्व भी है, और मैंने इस विषय में यथासाध्य प्रयत्न भी किया है। क़रीब ८ वर्ष पूर्व मैंने "ओसवाल ज्ञाति समय निर्णय" नाम की एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी थी जिसने इस विषय पर अच्छा प्रभाव डाला।" इतिहास विषय की ज्यों ज्यों विशेष चर्चा की जाती है त्यों त्यों उसका तथ्य भी निकलता जाता है, कारण इस प्रवृत्ति से लेखक को अधिकाऽधिक प्रमाणों की खोज करनी पड़ती है। किसी ऐतिहासिक विषय में शंका करना भी अनुचित नहीं है आज हमारे सामने इस विषय की अनेक शंकाएं समुपस्थित हैं जिनका समाधान करना ही इस निबन्ध का उद्देश्य है।

उपकेश (ओसवाल) वंश के संस्थापक आद्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरि थे इस बात को श्रीरत्नप्रभसूरि जयन्ती महोत्सव नामक पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णित की है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि वि. पूर्व ४०० वर्ष अर्थात् वीरनिर्वाण सं० ७० में मरुधर प्रान्त एवं उपकेशपुर नगर में पधारे और अजैनों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दे जैन बनाया और उस नवदीक्षित जनसमूह का नाम "महाजन वंश" स्थापित किया, आगे चलकर वे उपकेशपुर से अन्य प्रान्तों में जा बसने से उपकेश वंशी कहलाए, यदि यह नामसंस्कार मूल समय के बाद चार पाँच शताब्दी से हुआ हो, तो भी असम्भव नहीं है, और इस नाम का ही निर्णय करना हो तो विक्रम की प्रथम शताब्दी से पूर्व मिलना असम्भव है, आगे चलकर विक्रम की दशवीं-ग्यारवीं शताब्दी में उपकेशपुर का अपभ्रंश ओशियों हुआ, इस हालत में उपकेशवंश का नाम भी ओस-

बाल अयुक्ति युक्त नहीं है। वर्त्तमान ओसवालों की उत्पत्ति की; शोध खोज करने पर भी विक्रम की दशमीं शताब्दी से प्राचीन प्रमाण नहीं मिले यह बात स्वाभाविक ही है क्योंकि जिसका जन्म ही नहीं उसका नाम ढूंढना जैसे "पाणी को मथ कर घृत निकालना" है। फिर भी ओसवालों की उत्पत्ति उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई इसमें तो पुराणे और नये विचार प्रायः सहमत ही हैं पर इस घटना के समय के विषय में मतभेद अवश्य है यद्यपि नये विचारवाले आज पर्यन्त किसी निश्चयाऽऽत्मक सिद्धान्त पर तो नहीं आए; तथापि कई प्रकार की शङ्काएं अवश्य किया करते हैं। किसी पदार्थ के निर्णय करने में तर्क व शङ्का करना कोई बुरी बात नहीं है उल्टी लाभकारी ही है, पर इसके पहिले सत्य को स्वीकार करने की योग्यता प्राप्त करना कुछ विशेष लाभप्रद है।

किसी भी वस्तु को पूर्णतया जाँच एवं उसका निर्णय करने में सबसे पहिला कार्य, समय, शक्ति, अभ्यास और साधन सामग्री का जुटाना है, पर खेद है कि इस विषय में शायद ही किसी संशोधक ने आज तक यावच्छक्य परिश्रम किया हो, इस महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन में सर्वप्रथम कर्त्तव्य तो ओसवालों ही का है। उन्हें चाहिये कि अपनी जाति की उत्पत्ति के विषय में भरसक प्रयत्न करें। यह लिखते तो हमें फिर भी दुःख होता है कि अखिल भारतीय ओसवाल महासम्मेलन के दो दो अधिवेशन होगए पर उनमें इस विषय की चर्चा तक नहीं चली, जिस समाज के उद्धार के लिए तो हम लाखों का बलिदान करने के साथ समय एवं शक्ति का भी व्यय करें पर उसकी उत्पत्ति के बारे में एकदम चुप्पी साध लें यह निरी मूर्खता ही है—कहा है "मूलं नास्ति कुतः शाखा" अर्थात् जिस समाज के मूल का पता नहीं उसके अन्य अंगों का उद्धार कैसे हो सकेगा। और जब महासम्मेलन के विद्वानों का भी यह हाल है तो अन्य साधारण व्यक्ति का तो कहना ही क्या? आज ओसवाल वंशीय केवल पैसा उपार्जन करना ही अपना गौरव समझते हैं, सभ्य समाज इन्हें प्राचीन कहे या अर्वाचीन इसकी इन्हें क्या परवाह है। पर (आजकल) समय की रुख देखते यह आवश्यक हो गया है कि हम सर्व प्रथम अपने इतिहास को उपलब्ध करें।

उपकेशवंश (ओसवालों) की उत्पत्ति-समय के विषय में जो शङ्काएँ हमारे सामने पेश होती हैं उनका समाधान करने के पूर्व दो बातों का उल्लेख करना हम परमावश्यक समझते हैं। उनमें पहिली तो यह कि महाराजा उत्पलदेव को परमार जाति का कहना, दूसरी उपकेशवंश का नाम वर्त्तमान ओसवालों से संगत करना। बस यही दो बातें हमारे कार्य में रोड़ा डाल रही हैं अर्थात् भ्रम पैदा करती हैं अतः इनका समाधान करना अत्यावश्यक है।

उपकेशपुर नगर बसानेवाले उत्पलदेव को कई एक इतिहासाऽनभिज्ञ परमार कहते हैं, वस्तुतः परमार नहीं थे क्योंकि केवल भाट भोजकों की दन्तकथाओं के—किसी प्राचीन ग्रन्थ या पट्टावलियों में उत्पलदेव राजा को परमार नहीं लिखा है प्रथम तो उस समय में परमारों का अस्तित्व भी नहीं था कारण उत्पलदेव का समय तो विक्रम से ४०० चार सौ वर्ष पूर्व का है और परमारों के आदि पुरुष धूम्रराज परमार-बाद उत्पलदेव हुआ जिसका समय विक्रम की दशवीं शताब्दी है तो फिर समझ में नहीं आता कि भिन्नमाल का उत्पलदेव को परमार जाति का कैसे बतलाया जाता है।

उपकेशगच्छ पट्टावली में लिखा है:—

"श्री लक्ष्मी महास्थानं तस्याभिधानं पूर्वं (नाम) कृत-युगे रत्नमालं त्रेतायुगे पुष्पमालं द्वापरे श्रीमालं कलियुगे भिन्न-मालं तत्र श्री राजा भीमसेन स्तत्पुत्रश्री पुञ्जस्तत्पुत्र उत्पलदेव-कुमार अपर नाम श्रीकुमारस्तस्य बान्धवः श्री सुरसुन्दरो युव राजो राज्यभारे धुरन्धरः"।

इस उल्लेख से स्पष्ट होजाता है भिन्नमाल के राजवंश के साथ परमार वंश का कोई सम्बन्ध नहीं है, अब हमें यह देखना है कि भिन्नमाल के राजा किस वंश के थे और भिन्नमाल कितना प्राचीन स्थल है।

श्रीमाल पुराण से लिखा है:—

श्रीमालेऽहं निवत्स्यामि, श्रीमालं दयितं मम ॥
श्रीमाले ये निवत्स्यन्ति, ते भविष्यन्ति मे प्रियाः ॥

× × ×

श्री कार स्थापना पूर्वं, श्रीमाले द्वापरान्तरे ॥
श्री श्रीमाल इति ज्ञाति, स्तत्स्थाने विहिता श्रिया ॥

विमल प्रबन्ध ॥

श्रीमालमिति यन्नाम, रत्नमाल मिति स्फुटम् ॥
पुष्पमालं पुनर्भिन्नमालं, युग चतुष्टये ॥
चत्वारि यस्यनामानि, वितन्वन्ति प्रतिष्ठितिम् ॥
अहो ! नगरसौन्दर्यं, प्रहार्यं त्रिजगत्यपि ॥

"इन्द्रहस गणिकृत उपदेशकल्पवल्ली"

"नमिनाह चरियं नामक ग्रन्थ में पोरवालों की उत्पत्ति स्थान श्रीमाल ही बतलाया गया है"

इस तरह अनेक ग्रन्थों में श्रीमालपुर (भिन्नमाल) की प्रशस्ति के श्लोक मिलते हैं। इस नगर की ऐतिहासिक प्राचीनता के विषय में यों कहा जाता है कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में भिन्नमाल के शासन-कर्त्ता परमार थे। इनके दो शिलालेख मिले हैं जिनमें एक तो वि० सं० १११३ कृष्णराज का और दूसरा इनका ही वि. सं. ११२३ का है।

श्रीमान् पं० इ० गौरीशंकरजी ओझा ने अपने राजपूताना का इतिहास पहिला खण्ड पृष्ट ५६ पर लिखा है कि भिन्नमाल में वि० सं० ४०० और इनके पूर्व गुर्जरों का राज था और वि० सं० ६८५ में चावड़ा-वंशी व्याघ्रमुख नाम का राज था।

जिस समय वि० सं० ५६७ में हूण तोरमाण पंजाब से मरुधर की ओर आया उस समय भिन्नमाल में गुर्जरों का राज था, हूणों ने गुर्जरों को हरा दिया और गुर्जर लोग लाट की तरफ चले गए। इस जाति के नाम से ही उस प्रान्त का नाम गुर्जर हुआ है। हूणों के आगमन समय मारवाड़ में माण्डव्यपुर, उपकेशपुर, नागपुर, जबल्ली-पुर और भिन्नमाल ये नगर अच्छे आबाद और उन्नति पर थे। जिस में हूणोंने अपनी राजधानी भिन्नमाल में कायम की। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय अन्य नगरों से भी यह चढ बढ कर था ताकि हूणों ने अपनी राजधानी बनाई। हूणों के समय भिन्नमाल की समृद्धि ही इसकी प्राचीनता बतला रही है। हूणों के वख्त वहां (भिन्न-

माल में) जैनाचार्य हरिदत्तसूरि व देवगुप्त का होना पाया जाता है। आचार्य श्री ने तोरमाण को उपदेश देकर एक जैन मन्दिर बनाया इस से ज्ञात होता है कि हूणों के समय में भिन्नमाल में जैनों की अच्छी आबादी रही होगी।

विक्रम की आठवीं शताब्दी·····के रचयिता निशीथ चूर्णि में भिन्नमाल का उल्लेख इस प्रकार करते है। तद्यथा :—

"रूप्यमयं जहा भिल्लमाले वम्मलतो" ॥

(वि० सं० ७३३) निशीथचूर्णि १०–२२५

"सिवचन्दगणी अहमय हरो ति सो एत्थ आगओ
देसा सिरि भिल्लमाल नयरम्मि संट्ठिओ कप्परुक्खो व" ।

(वि० सं० ८३५)–कुवलय माला

तत्रेयं तेनत कथा कविना, निःशेष गुण गणाधरे ॥
श्री भिल्लमाल नगरे, गदिताऽग्रिममण्डपस्थाने ॥

(वि० सं० ९९२) उपमति० कथा

इनके अतिरिक्त पं० हीरालाल हंसराज ने जैन गोत्र संग्रह नामक पुस्तक में वि० सं० २०२ में भिन्नमाल पर अजितसिंह नाम के राजा का राज्य होना लिखा है। उस समय मीर मामोची ने भिन्नमाल पर आक्रमण कर उसे लूटा। इसके पूर्व भिन्नमाल में किसका राज था इसके लिये कोई ऐतिहासिक साधन उपलब्ध नहीं। पर पट्टावलियों से ऊपर बतलाये वि० सं० के ४०० चारसौ वर्ष पूर्व भिन्नमाल पर राजा भीमसेन का राज्य होना पाया जाता है। भिन्नमाल की प्राचीनता के पश्चात् अब यह बतलाना है कि कई लोगों ने आबू व किराडू के उत्पलदेव को परमार और उपकेशपुर बसानेवाले भिन्नमाल के राज-कुमार उत्पलदेव को एक ही मानने की भूल की है। पर जब ओसवाल जाति की उत्पत्ति का समय ऐतिहासिक प्रमाणों से विक्रम की पांचवी शताब्दी सिद्ध होता है। तब आबू के उत्पलदेव कुमार ने किसी कारणसे यदि ओशियों के प्रतिहारों का आश्रय लिया और अनन्तर वह वापिस अपने नगर को चला गया इस हालत में उत्पलदेव परमारने विक्रम की

दशवीं शताब्दी में उपकेशपुर (ओसियां) बसाई यह मान लेना सरासर भूल नहीं तो और क्या है ? यदि यह भूल उपकेशपुर बसाने-वाले राजकुमार उत्पलदेव को परमार मानने से ही हुई हो तो इस लेख से अपनी भूल को सुधार लेने की परम आवश्यक्ता है।

२ दूसरी शंका उपकेशवंश का नाम ओसवाल मानना है। इस विषय में प्रथम तो हमें यह देखना है कि ओसवाल शब्द की उत्पत्ति किस कारण और किस समय में हुई। अनेक प्रमाणों से यह पुष्ट होता है कि ओसवाल शब्द को उत्पत्ति ओशियों नगरी से ही हुई, और ओशियों उपकेशपुर का अपभ्रंश है और इस शब्द की उत्पत्ति का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी के आसपास का है। इसके पूर्व इस नगर का नाम उपकेशपुर और जाति का नाम उएस–उकेश–और–उपकेश था जैसेः–

(क) "उएस यह मूल नाम है और उसवाली भूमि का द्योतक है, अर्थात् जहां उस हो उसे उएस कहते हैं और उस भूमि पर जो शहर आबाद हुआ वह उएसपुर कहलाया। यह इसकी प्राकृत परिभाषा है।

(ख) उकेश प्राकृत के लेखकों ने उएस को उकेशपुर लिखा।

(ग) संस्कृत के रचयिताओं ने उकेश को अपनी सहूलियत से उपकेश-पुर लिखा। इस विषय में प्राचीन ग्रन्थों में इस नगर का नाम उकेश और उपकेशपुर ही मिलता है यथा :—

समेत मेतत प्रथितं पृथिव्या मूकेश नामास्ति पुरं ॥

ओशियां मन्दिर का शिलालेख वि० सं० १०१३ का

कदादूचिकेशपुरे, सूरयः समवासरन्।
वा यादृग् तन्नगरं येन, स्थापितं श्रूयतां तथा ॥

उपकेशगच्छ चरित्र श्लोक २८

अस्ति स्वस्ति चव्व (क्व) द्भूमे र्मरुदेशस्य भूषणम् ॥
निसर्गसर्गसुभग मु (प) केशपुरं वरम् ॥

नाभिनन्दनोद्धार श्लोक १८

अस्ति उपकेशपुरं नगरं, तत्रौत्पलदेवनरेशो राज्यं करोति।

उपकेशगच्छ पट्टावली

पूर्वोक्त प्राचीन शिलालेखों व ग्रन्थों में सर्वत्र ऊकेश या उपकेशपुर के नाम का ही उल्लेख मिलता है, पर किसी स्थान पर भी ओशियां शब्द का प्रयोग हुआ हो यह दृष्टिगोचर नहीं हुआ, इससे यह निश्चय होता है कि जिसको आज हम ओशियां कहते हैं उसका असली मूल-नाम ऊकेश या उपकेशपुर था और इसी उपकेशपुर के निवासियों का नाम उपकेशवंश हुआ, बाद में कई एक ❀ कारणों से गोत्र व जातियों के नाम अलग २ पड़ गए तथापि आज पर्यन्त इन जातियों के आदि में वही मूलनाम उएस, ऊकेश और उपकेश लिखने की पद्धति विद्यमान है, जिनके प्रमाणस्वरूप हजारों शिलालेख इस समय भी मौजूद हैं, नमूना के लिए देखिये:—

"ई० सं० १०११ चैत सुद ३ श्री कक्काचार्य-शिष्य देवदत्त गुरुणा उपकेशीय चैत्य गृहे अस्वयुज् चैत्य षष्ठ्यां शान्ति प्रतिमा स्थापनीय गन्धोदकान् दिवालिका भासुल प्रतिमा इति"।

(बा० पूर्णचन्द्रजी सं० प्रथमखण्ड लेखांक १३४)

"सं० ११७२ फाल्गुन सुद ७ सोमे श्री ऊकेशीय सावदेव पत्न्या आम्रदेवी कारिता ककुदाचार्य प्रतिष्ठिता"।

(बा० पूर्णचन्द्रजी सं० प्रथमखण्ड लेखांक ९१७)

"सं० १३५६ ज्येष्ठ बद ८ श्री ऊकेशगच्छे श्री कक्कसूरि संताने शाह माल्हण भा० सुहवदेवी पुत्र पाल्हयेन श्री शान्तिनाथ बिंब कारितं पित्रो श्रे० प्रति० श्री सिद्धसूरिभिः"।

(आ० बुद्धि० सं० लेखांक १०४४)

❀ किन्हीं का व्यापार से किन्हीं का पिता के नाम से कई एकों का ग्राम के नाम से किन्हीं २ का कोई महत्व का कार्य करने से तथा कई एकों का हास्य कौतुक से पृथक् पृथक् गौत्र या जाति का नाम हो गया।

"विक्रम सं० १०७३ में उपकेशगच्छाचार्य देवगुप्तसूरि ने नवपद प्रकरण लघुवृत्ति की रचना की वि० सं० १०९२ पाटन नगर में उपकेशीय महावीर मन्दिर में इस लघुवृत्ति पर बृहद्वृत्ति की रचना की।"*

इस भाँति सैकड़ों हजारों शिलालेख और प्राचीन ग्रंथ इस समय विद्यमान हैं जिनमें उपकेशवंश और उपकेशगच्छ का प्रयोग पाया जाता है, पर कहीं ओशियों या ओसवाल शब्द नजर नहीं आते।

जब से उपकेशपुर का अपभ्रंश आशियों हुआ तब से कहीं २ इस शब्द का भी उल्लेख हुआ है पर वह बहुत थोड़े प्रमाण में और समीपवर्ती समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से हुआ है, जैसे—

"सं० १२१२ ज्येष्ठ वदि ८ भौमे श्री कोरंटगच्छे श्री नन्नाचार्य संताने श्री ओशवंशे मंत्रि धाधूकेन श्री विमल मन्त्री हस्तीशालाया श्री आदिनाथ समवसरणं कारयांचके श्री नन्नसूरि पदे श्री कक्कसूरिभिः प्रतिष्ठितं वेलापहन्नी वास्तव्येन।"

(स० जिन विजयजी सं० शि० दू० लेखाङ्क २४८)

इसके पहिले कहीं पर ओसवाल शब्द का प्रयोग नजर नहीं आया है।

पूर्वोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सारांश निकलता है कि ओसवाल शब्द यह असली (मूल शब्द) नहीं है किन्तु उपकेश का अपभ्रंश है। पहिले जो जैन धर्मानुयायी उपकेश वंशीय थे वे ही आज ओसवाल नाम से विख्यात है। और इनका प्रारम्भ विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से होता है।

श्रीमान् बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर अपने शिलालेख संग्रह खण्ड तीसरे में पृष्ट २५ पर "ओसवालज्ञाति नामक" लेख में लिखते हैं—

---

* इस स्थान पर हमने समय का निर्णय न कर केवल शब्द को ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि ओसवाल में ओस शब्द ही प्रधान है ओस शब्द भी उएस शब्द का रूपान्तर है और उएस उपकेश का प्राकृत है, इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत "ओशियां" नामक स्थान भी उपकेश नगर का रूपान्तर है" जैनाचार्य रत्नप्रभसूरिजी वहाँ के राजपूतों को जीव हिंसा छुड़ा कर उन लोगों को दीक्षित करने के पश्चात् वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुए"

श्रीमान् बाबू जी का कथन भी ऊपर के प्रमाणों से सर्वथा मिलता है अतएव सिद्ध हुआ कि उपकेश का अपभ्रंश ओशियां है, और उसे आबाद करने वाले श्रीमाल नगर के राजकुमार श्री उत्पलदेव के नाम के साथ पंवार शब्द किसी स्थान पर नहीं है, और जिन्हें आज हम ओसवाल कहते हैं पूर्व में उन्हीं का असली नाम उपकेश वंश था।

उपरोक्त दोनों बातों का निर्णय करने का सारांश यही है कि—

प्रथम तो ओसवाल जाति की प्राचीनता के विषय में विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से पूर्व कालीन समय का अन्वेषण करने में कोई अपने समय को व्यर्थ व्यय न करें और न इस विषय की दलीलें कर दूसरों का समय नष्ट करें, कारण ओसवाल शब्द मूल नहीं पर उपकेश का अपभ्रंश है अतः जिन्हें यदि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से पूर्व इस जाति की प्राचीनता के प्रमाण ढूंढ़ने हों वे "उपकेश वंश के नाम का प्रमाण खोजे क्योंकि इस तेरहवीं शताब्दी से पहिले इस ओसवाल जाति का यही नाम प्रचलित था और जब उपकेशवंश की प्राचीनता सिद्ध हो जायगी तब ओसवालों की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है क्योंकि एक ही जाति के समयाऽनुसार दो नाम हैं।

दूसरा सारांश—उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल नगर के उत्पलदेव और हैं तथा आबू के उत्पलदेव परमार और हैं एवं दोनों के समय में १४०० वर्ष का अन्तर है इसलिए कोई भी उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमालनगर के राजकुमार उत्पलदेव को परमारवंशीय समझने की भूल

न करें, कारण ये परमार वंश के नहीं थे, केवल दोनों की नाम की समानता होने से ही कई एक इतिहासाऽनभिज्ञ मनुष्यों ने इन्हें एक ही समझने की भूल की है और इसी कारण ये शङ्काएँ पैदा हुई हैं, आगे के लिए अब ये शङ्काएँ भी निर्मूल हो जाय इसीके लिए हमारा यह प्रयास हैं।

अस्तु ! अब हम यह बतलाने की चेष्टा करेंगे कि कौन २ लेखक किस २ रीति से इन उत्पलदेवों की एकता सिद्ध करते हैं और उनका हमारी तरफ से क्या परिहार है ? पाठक जरा ध्यानपूर्वक इसे पढ़ें—

शङ्का नं० १ "मुनौयत नैणसी की ख्यात का कथन है कि—आबू के उत्पलदेव परमार ने ओसियां बसाई और इस उत्पलदेव का समय विक्रम की दशमी शताब्दी है यदि ओसवाल जाति इसी ओसियां से उत्पन्न हुई है तो यह जाति विक्रम की दशवीं शताब्दी से प्राचीन किसी हालत में नहीं हो सकती ?"

समाधान—मुनौयत नैणसी की ख्यात में किसी स्थान पर यह नहीं लिखा है कि आबू के उत्पलदेव परमार ने ओसियां बसाई, पर नैणसी की ख्यात से तो उल्टी ओसियां की प्राचीनता ही सिद्ध होती है; देखिये "नैणसी की ख्यात" प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा पृष्ट २३३, पर लिखा है—

> "धरणी वराह का भाई उत्पलराय किराडू छोड़ कर ओसियां में जा बसा सचियाय देवी प्रसन्न हुई माल दिया, ओसियां में देवल कराया" इसकी टिप्पणी में लिखा है "बसन्तगढ़ से मिले हुए सं० १०९९ के परमारों के शिलालेख से पाया जाता है कि उत्पलराजा धरणी वराह का भाई नहीं किन्तु परदादा था, जिनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी के आरम्भ में होना चाहिये।

इस प्रमाण से तो यह सिद्ध होता है कि उत्पलदेव परमार के पूर्व भी ओसियों समृद्धि सम्पन्न था, तब ही तो उत्पलराय किराडू छोड़कर

ओसियों में जाकर बसा, ओसियाँ कितनी प्राचीन हैं यह तो हम आगे चल कर बतावेंगे, यहाँ तो केवल शङ्का का ही समाधान है। शङ्का करने वालों को पहिले ग्रन्थ का पूर्वोऽपर सम्बन्ध देख लेना चाहिए ताकि उभय पक्ष की समय शक्ति का अपव्यय न हो।

शङ्का नं० २ ओसवाल जाति का शिलालेख विक्रम की तेरहवीं शताब्दी पूर्व का नहीं मिलता है, इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस जाति की उत्पत्ति तेरहवीं शताब्दी के आस पास ही होनी चाहिए।

समाधान—किसी जाति व स्थान की प्राचीनता केवल शिलालेखों के आधार पर ही नहीं है, परन्तु इसके और भी साधन हो सकते हैं। यदि शिलालेख का ही आग्रह किया जाय तो मान लो कि ओसवाल जाति तो इतनी प्राचीन नहीं है; पर इस जाति से पूर्व भी जैनधर्म पालने वाली अन्य जातिएँ या मनुष्य तो होंगे, और उन लोगों ने आत्मकल्याणार्थ जैन-मन्दिर व मूर्तिएँ भी निर्माण कराई होंगी, पर आज उनके विषय में भी विक्रम की नौवीं दशवीं शताब्दी पूर्व का कोई भी शिलालेख नहीं मिलता है, तो यह तो कदापि नहीं समझा जायगा कि शिलालेख के न मिलने पर पूर्व में कोई जैनधर्मोऽनुयायी मनुष्य या जाति नहीं थी? यह कदापि नहीं हो सकता। इस शङ्का के समाधान में तो यही कहना पर्याप्त है कि हम ऊपर लिख आए हैं कि विक्रम की बारहवीं तेरहवीं शताब्दी के आस पास ओसवाल शब्द की उत्पत्ति हुई है, जो उपकेशवंश का अपभ्रंश है। जब इस शब्द की उत्पत्ति ही बारहवीं शताब्दी के आस पास हुई तो इसके पूर्व कालिन शिलालेखों में इस शब्द की खोज करना आकाश में पैरों का ढूँढ़ना है। यदि इस शब्द की प्राचीनता को छोड़ इस शब्द के पर्याय-शब्द-वाची जाति की प्राचीनता का अन्वेषण करना है तो उपकेश वंश की शोध करनी उचित है क्योंकि जो उपकेश वंश की प्राचीनता है वही ओसवाल वंश की प्राचीनता है। इस विषय, में हम आगे चलकर सप्रमाण वर्णन करेंगे।

शंका ३—भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभसूरि नाम के छः आचार्य हुए हैं, यदि ओसवाल वंश के स्थापक अन्तिम रत्न-

प्रभसूरि मान लिए जायँ तो क्या हर्ज है ! और इनका समय विक्रम की छठीं (६) शताब्दी का है जो ऐतिहासिक प्रमाणों से ओसवाल जाति की उत्पत्ति समय से मिलता जुलता भी है ।

समाधान—भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभसूरि नाम के छः आचार्य हुए और अन्तिम आचार्य रत्नप्रभसूरि का समय भी वि० की छठीं शताब्दी का है यह बात सत्य है । परन्तु यदि अन्तिम रत्नप्रभसूरि को ही ओसवाल जाति का संस्थापक मान लिया जाय तो भी प्रमाण का सवाल तो हमारे सामने ज्यों का त्यों खड़ा ही रहेगा । आद्य रत्नप्रभसूरि और अन्तिम रत्नप्रभसूरि के बीच १००० वर्षों का अन्तर है, फिर भी अन्तिम रत्नप्रभसूरि का समय तो निकट का है । उस समय के अनेकों ग्रन्थ भी आज मिलते हैं पर किसी ग्रन्थ, किसी स्थान या किसी शिलालेख से यह पता नहीं चलता है कि विक्रम की छठीं शताब्दी में रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल वंश की स्थापना की, और इसके विरुद्ध आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि के विषय में यह प्रमाण मिलता है । फिर यह कहां की समझदारी है कि जिसका प्रमाण मिलें उसे तो नहीं मानें और जिसके प्रमाण की गन्ध तक न मिलें उसे कोरे अनुमान मात्र से ही ओसवालवंश का संस्थापक मानलें ? यह तो केवल दुराग्रह ही सिद्ध होता है ।

पाठकों की जानकारी के लिए आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि को ओसवाल वंश का संस्थापक बताने वाले प्रमाण हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

तत्र श्रीमद्रत्नप्रभसूरिः पंचशतशिष्यैः समेतो लूणाद्रहीं समायाति, मासकल्पं चारण्ये स्थितः । गौचर्यार्थं मुनीश्वराः व्रजन्ति परं भिक्षां न लभन्ते । लोक मिथात्ववासिता यादृशा गतास्तादृशा आगताः । मुनीश्वराः पात्राणि प्रतिलेख्य मासं यावत् सन्तोषेण स्थिताः । पश्चात् विहारं कृतवन्तः । पुनः कदाचित् तत्रायाताः । शासन देव्या कथितं भो ! आचार्य ! अत्र चतुर्मासकं कुरु,

तव महालाभो भविष्यति। गुरु पंचत्रिंशन्मुनिभिः सह स्थितः मासी, द्विमासी, त्रिमासी, चतुर्मासीश्च (उप्योसित-कारिका) उपोषिता कृता। अथ मन्त्रीश्वर-ऊहड़सुतं भुजंगो ददंश। अनेके मन्त्रवादिन आहूता परं न कोऽपि समर्थ स्तत्र तैः कथितं, अयं मृतः, दाहो दीयताम्। तस्य स्त्री काष्ठभक्षणे श्मशाने आयाता श्रेष्ठिनो, महद्दुःखं जातं, वादि वचसाऽऽकर्ण्य लघुशिष्य स्तत्राऽऽ गतः झंपाणे (कुमारशवं) दृष्ट्वा एवं कथितवान् भो! जीवितं कथं ज्वालयत? तैः श्रेष्ठिने कथितं, एषो मुनीश्वर एवं कथयति, श्रेष्ठिना झंपाणो वलितः। क्षुल्लकश्च पृष्टः (गुरु-पृष्टे स्थितः) मृतक मानीय गुरो रग्रे मुंचति, श्रेष्ठी च गुरुचरणयोः शिरो निवेश्य एवं कथयति। भो दयालो! मयि देवो रुष्टः मम गृहं शून्यं भवति, तेन कारणेन मह्यं पुत्रभिक्षां देहि। गुरुणा प्रांशु जलमानीय चरणौ प्रक्षा-ल्य तस्मिन् क्षंटितम्। सहसा सजीवितो बभूव हर्षवादित्राणि बभूवुः (श्च वादिभि रभाणि विभूव) लोकैः कथितं श्रेष्ठिसुतः नूतने जन्मनि आगतः श्रेष्ठिना गुरूणां अग्रे अनेक-मणि-मुक्ताफल-सुवर्ण-वस्त्रादि समा-नीय भगवन्! गृह्यताम् (इत्युक्तं) गुरुणा कथितं मम न कार्यं परं भवद्भि र्जिन धर्मो गृह्यताम् (ग्राह्यः) सपादलक्ष श्रावकाणां (प्रतिबोधिः कारेकः) × × × × प्रतिबोधकृतः

"उपकेश गच्छ पटावली"

इस पदावली में "सपाद लक्ष श्रावकाणां प्रतिबोधि कारकः" अर्थात् सवालक्ष राजपूत आदि अजैनों को आचार्य रत्नप्रभसूरि ने प्रतिबोध कर जैन बनाया यह लिखा है। अन्य पदावलियों में ३८४००० की संख्या भी लिखी है, शायद इसका मतलब यह हो कि सबसे पहिले उपकेशपुर में १२५००० और बाद में उसके आस पास घूमकरजैन बनाये होंगे

जिनकी संख्या सामिल होकर ३८४००० घरों की हुई हो और यह बात सम्भव भी हो सकती है। आगे चलकर नूतन श्रावकों के कल्याणार्थ भगवान् महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई, इसके विषय में पट्टावलीकार लिखते हैं—

सप्तत्या वत्सराणां चरम जिनपते मुक्तजातस्य वर्षे ।
पंचम्यां शुक्लपक्षे सुरगुरु दिवसे ब्राह्मणे सन्मुहूर्ते ॥
रत्नाऽऽचार्यैः सकलगुणयुतैः, सर्वसंघाऽनुज्ञातैः ।
श्रीमद्वीरस्य बिम्बे भवशतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ॥ १ ॥

इस लेख में श्री वीर से सत्तरवें ७० वर्ष में आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में अजैनों को जैन बनाये और महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई यह स्पष्ट उल्लेख है। इस मन्दिर के साथ ही आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने कोरण्टपुर नगर में भी महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई जो इससे स्पष्ट होता है—

उपकेशे च कोरण्टे, तुल्यं श्री वीरविम्बयोः ।
प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या- श्री रत्नप्रभसूरिभिः ॥ १ ॥

" निज रूपेण उपकेशे प्रतिष्ठा कृता वैक्रय (विकृत) रूपेण कोरण्टके प्रतिष्ठा कृता श्राद्धै र्द्रव्य व्ययः कृतः इति ।"

इस लेख में यह बतलाया है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने निजरूप से उपकेशपुर और वैक्रय रूप से कोरण्टपुर * में अर्थात् एक ही लग्न मुहूर्त में दोनों मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराई, ये दोनों मन्दिर आद्याऽवधि विद्यमान हैं, जिनका जीर्णोद्धार समय २ पर जरूर हुआ है, इन दोनों मन्दिरों की प्राचीनता के विषय में अनेक प्रमाण मिल सकते हैं जिन्हें हम आगे चलकर बतावेंगे। यहां तो केवल शंका का परिहार मात्र

---

* प्रभाविक चरित्र के मानदेवसूरि प्रबन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि देवचन्द्रोपाध्याय कोरण्टा के महावीर मन्दिर की व्यवस्था करते थे। देवभद्रोपाध्याय का समय विक्रम की पहिली या दूसरी शताब्दी है, इसके पूर्व के कालिन समय का यह मन्दिर है। इसलिए यह मानना अनुचित नहीं है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि से प्रतिष्ठित उपकेशपुर के महावीर मन्दिर के समकालीन जो प्रतिष्ठा कराई वही मन्दिर कोरण्टा में विद्यमान हैं।

करना है कि अन्तिम रत्नप्रभसूरिजी के लिए आज तक भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है कि उन्होंने सब से प्रथम ओसवालवंश की स्थापना की है—यह प्रमाणित होजाय। परन्तु आद्य रत्नप्रभसूरि के विषय में जो प्रमाण मिले हैं उनमें से उपकेशगच्छ पट्टावली का प्रमाण तो हम ऊपर लिख आए हैं और "नाभि नन्दन जिनोद्धार" नामक ग्रन्थ तथा उपकेशगच्छ चरित्रादि ग्रन्थों में भी इस विषय को प्रमाणित करने के अनेक प्रमाण मिले हैं कि आचार्य रत्नप्रभसूरि वीरात् (महावीर से) ७० वर्ष बाद उपकेशपुर में आए, और महाजनवंश (ओसवालवंश) की स्थापना की। अतः ओसवालवंश के संस्थापक आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि को ही मानना युक्ति-युक्त और प्रमाण सिद्ध है।

शंका नं० ४—ओसवाल बनाने के समय ओशियों में महावीर का मन्दिर बना, उसी मन्दिर में एक प्राचीन शिलालेख लगा हुआ है उसका समय वि० सं० १०१३ का है इससे अनुमान हो सकता है कि ओसवालोत्पत्ति का समय दशवीं, ग्यारहवीं शताब्दी का ही होना चाहिए ?

समाधान—यह शंका केवल लेख का संवत् देख के ही की गई है न कि सारा लेख पढ़ के, यदि सम्पूर्ण लेख को पढ़ लिया होता तो इस शंका को स्थान ही नहीं मिलता। देखिये श्रीमान् बा० पूर्णचन्द्रजी संपादित शिलालेख संग्रह प्रथम खण्ड लेखांक ७८८ में प्रस्तुत शिलालेख यों का यों मुद्रित होचुका है, यदि पहिले उस लेख को ध्यानपूर्वक पढ़ लिया होता तो यह स्वयं स्पष्ट होजाता कि वह लेख न तो ओसवालों की उत्पत्ति का है, और न महावीर के मन्दिर की मूल प्रतिष्ठा का है। इस लेख से तो उल्टा ओशियों का प्राचीनत्वसिद्ध होता है। कारण इस लेख में तो ओशियों में प्रतिहारों का राज होना लिखा है जिसमें प्रतिहार वत्सराज की बहुत प्रशंसा लिखी है, यदि इस लेख के पूर्व ओशियों वत्सराज प्रतिहार के अधिकार में रही है और वत्सराज का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी का माना जाता है तो उस समय उपकेशपुर (ओशियां) उल्टा एक ऐश्वर्य शाली नगर था यह सिद्ध होता है—जिसका सबल प्रमाण यह शिलालेख है और यह इस नगर की प्राचीनता बतलाता है।

यह शिलालेख बीच बीच में अत्यन्त खण्डित हो गया है अतः उसके कुछ २ आवश्यक अंश पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ देते हैं:—

× × × प्रकट महिमा मण्डपः कारितोऽत्र × × × ×

× × × भूमण्डनो मण्डपः पूर्वस्यां ककुभि त्रिभारा विकलासन् गोष्ठिकानु × × ×

× × तेन जिनदेव धाम तत्कारितं पुन रमुष्य भूषणं × × ×

× × × संवत्सर दशशत्या मधिकायां वत्सरैस्त्रयो-दशभिः फाल्गुन शुक्ल तृतीय × × ×

इन खण्डित वाक्यांशों का यह सारांश जान पड़ता है कि इस मन्दिर के पुराणे रङ्गमण्डप का जीर्णोद्धार किसी जिनदेव नामा श्रावक ने वि० सं० १०१३ फाल्गुन शुक्ल तृतीया को करवाया। इस लेख के पढ़ने से इसका ओसवालों की स्थापना समय के सम्बन्ध का कोई पता नहीं पड़ता। हाँ यह बात मालूम होती है वि० सं० १०१३ के पहिले से यह मन्दिर बना हुआ था। विक्रम की आठवीं और नौवीं शताब्दी में तो उपकेशपुर उपकेशवंश से स्वर्ग सदृश शोभा पा रहा था जिसे हम आगे लिखेंगे। यहाँ तो उपर्युक्त सन्देह का दूरीकरण करना है। इस लेख के समय से ओसवालों की उत्पत्ति मानना कोई शङ्का नहीं किन्तु केवल मिथ्या भ्रम है।

शङ्का नं० ५—कल्पसूत्र में भगवान् महावीर से १००० वर्ष के आचार्यों की नामावली मिलती है, उसमें न तो रत्नप्रभसूरि का नाम है और न ओसवाल बनाने का जिक्र है, इससे अनुमान होता है कि इस समय के बाद किसी समय में ओसवालों की उत्पत्ति हुई होगी?

समाधान—श्री कल्पसूत्र भद्रबाहु कृत है और स्थविरावलि देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी रचित हैं। श्रीमान् देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमणजी ने महावीर से १००० वर्षों का इतिहास नहीं लिखा पर उन्होंने केवल अपनी गुरुआवली लिखी है। भगवान् महावीर के समय में दो परम्पराएँ थीं (१) पार्श्वनाथ परम्परा (२) महावीर परम्परा। जिनमें देवर्द्धि क्षमाश्रमण महावीर की परम्परा में थे।

आचार्य वज्रसेन सूरि के चार शिष्यों से चार कुल उत्पन्न हुए—चन्द्रकुल, नागेन्द्रकुल, विद्याधरकुल और निवृत्तिकुल, क्षमाश्रमणजी ने अपने कुल की गुरुआवली (गुरु वंशवृक्ष) लिखी है। जब महावीर परम्परा और विशेष निवृत्तिकुलादि का ही इतिहास कल्पस्थविरावली में नहीं मिलता है तो पार्श्वनाथ परम्परा और उपकेश गच्छ के लिए तो स्थान ही कहां से हो! और इससे यह कहना भी योग्य नहीं कि जिसका कल्पसूत्र स्थविरावली में उल्लेख नहीं हो वह ऐतहासिक घटना ही न हो। क्या वीर से १००० वर्ष में घटित हुई सारी घटनाएँ कल्पसूत्र की स्थविरावली में आ गई हैं? और केवल आसवालोंत्पत्ति घटना ही शेष रही है? यदि नहीं तो यह शङ्का ही क्यों? खैर! यह शङ्का तो ओसवाल बनाने की है परन्तु कल्पस्थविरावली में तो पार्श्वनाथ परम्परा का नाम भी नहीं है और यह निःशङ्क है कि महावीर के समय के पहिले से ही पार्श्वनाथ की परम्परा विद्यमान थी—अतः यह शङ्का भी इतना वजन नहीं रखती जिससे हम ओसवालोत्पत्ति में संदेह करें।

शङ्का नं० ६—ओसवालों में सबसे पहले अट्ठारह गोत्र हुए, कहे जाते हैं; और वे अट्ठारह जाति के राजपूतों से हुए बताये जाते हैं; और उन अट्ठारह जाति के राजपूतों के विषय में एक कवित्त भी कहा जाता है वह यह है:—

"प्रथम साख पँवार १, शेष शिशोदा २ श्रृंगाला।
रणथंभा राठौर ३, वसंच ४ बालचचाला ५॥
दइया६ भाटी७ सोनीगरा८, कच्छावा९ धनगौड़१० कहीजे।
जादव ११ झाला १२ जिंद १३, लाज मरजाद लहीजे॥
खरदर पाट ओपे खरा, लेणा पाटज लाखरा।
एक दिन एते महाजन भये, शूरा बड़ा बड़ी साखरा॥ १॥

इस कवित्त में कई जातियों के नाम रह भी गए हैं फिर भी ये जातिएँ इतनी प्राचीन नहीं है कि जितना समय ओसवालों की उत्पत्ति का पट्टावलियों वगैरह में मिलता है।

समाधान—प्रथम तो यह कवित्त ही स्वयं अर्वाचीन है और किसी प्राचीन ग्रन्थ, पट्टावलियों एवं वंशावलियों में दृष्टि गोचर भी नहीं होता है।

दूसरा शङ्काकर्त्ताओं को जरा यह तो विचारना चाहिए, था कि यदि ओसवालोत्पत्ति विक्रम की दशवीं शताब्दी में ही मान ली जाय तो भी यह कवित्त तो अर्वाचीन ही ठहरता है। कारण इस कवित्त में बतलाई हुई राजपूतों की जातिएँ विक्रम की चतुर्थ शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक में पैदा हुई हैं। तो क्या इस कवित्त के आधार पर ओसवालोत्पत्ति का समय भी विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी समझा जा सकता है ? कदापि नहीं।

तीसरा कारण आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय न तो इन राजपूत जातियों का अस्तित्व ही था और न उन्होंने ओसवालों के अट्ठारहगोत्र स्थापित किए थे। कारण उनका उद्देश्य तो भिन्न भिन्न जातियों के टूटे हुए शक्ति तन्तुओं को संगठित करने का था और उन्होंने ऐसा ही किया। गोत्र का होना तो एक एक कारण पाकर होना संभव होता है।

वीर से ३७३ वर्ष में उपकेशपुर में महावीर प्रन्थि छेदन का एक उपद्रव हुआ। उस समय शान्ति स्नात्र द्वारा शान्ति की गई थी। उस पूजा में ९ दक्षिण और ९ उत्तर की ओर स्नात्रिएँ बनाये गए थे। इन अट्ठारह स्नात्रिएँ बनने वालों के गोत्रों का उपकेशगच्छ चरित्र में वर्णन किया है। पर यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि उस समय अट्ठारह गोत्र ही थे पर स्नात्रिएँ होने के कारण ही सर्व प्रथम अट्ठारह गोत्र होने का प्रवाद चला आया है। न कि ये गोत्र रत्नप्रभसूरि ने स्थापित किए।

संसार में जिन गोत्रों की सृष्टि हुई है उनमें किसी न किसी अंश में नाम के साथ समान गुण का भी अंश अवश्य था जैसेः—

आदित्यनाग— इनका आदि पुरुष अदितनाग था।
मुहणोयत— ,, ,, मुहणजी था।
घीया— इन्होंने घृत का व्यापार किया।
तेलिया— इन्होंने तेल का व्यापार किया था।
नागोरी— इन्होंने नागोर से अन्यत्र जा बास किया।
रामपुरिया— इन्होंने रामपुरा से ,, ,,
जालोरी— इन्होंने जालोर से ,, ,,

तथा काग, मीनी, चील बलाई ये हंसी ठट्ठा से प्रचलित हुए इत्यादि।

अब राजपूतों की अट्ठारह जातियों और ओसवालों के अट्ठारह गोत्रों की आपस में समानता और समकालीनता को भी देख लीजिये।

राजपूतों की अट्ठारह जातिएँ	समय	ओसवालों के १८ गोत्र	समय
(१) परमार	वि० की ९वीं शताब्दी	तप्तभट (तातेहड़)	ग्रंथ व पट्टावलियों
(२) शिशोदा	„ १४वी शताब्दी	बप्पनाग (बाफणा)	से विक्रम पूर्व ४००
(३) राठौड़	„ छठी शताब्दी	कर्णाट (कर्णावट)	वर्ष और ऐतहासिक
(४) सोलङ्की	„ „	बलाह (रांका)	साधनों से विक्रम
(५) चौहान	„ दशवीं शताब्दी	पोकरणा	की ५ वीं शताब्दी
(६) संखला	परमारों की शाखा	कुलहट	का समय।
(७) पड़िहार	छठीं शताब्दी	विरिहट	„
(८) बोड़ा	अप्रसिद्ध	श्री श्रीमाल (प्रसिद्ध)	„
(९) दहिया	तेरहवीं शताब्दी	श्रेष्टि वैद्य मुहता)	„
(१०) भाटी	चौथी शताब्दी	सूंचंति (संचेती)	„
(११) मोयल	चौहान की शाखा	अदित्यनाग	„
	१५वी शताब्दी	(चोरड़ीयादि)	„
(१२) गोयल	८वीं शताब्दी	भूरि (भटेवड़ा)	„
(१३) मकवाण	परमारों की शाखा	भद्र (समदड़िया)	„
(१४) कच्छवाह	नौवीं शताब्दी	चिंचट (देसरड़ा)	„
(१५) गौड़	बारहवीं शताब्द	कुंभट (प्रसिद्ध)	„
(१६) खरवड़	अप्रसिद्ध	कनोजिया	„
(१७) बेरड़	„	डिडु (कौचरमेहता)	„
(१८) सौरव	„	लघु श्रेष्टि (प्रसिद्ध)	„

इस—"राजपूतों की १८ जाति और ओसवालों के १८ गोत्रों की ऊपर दी हुई तालिका से पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि इनमें न तो समय की समानता है और न कोई शब्द की समानता है, फिर समझ में नहीं आता है कि ऐसी अर्थ शून्य निःसार दलीलें करके जनता में व्यर्थ भ्रम क्यों पैदा किया जाता है? यह तो केवल अपनी "धैर्य दर्शने असहिष्णु" बुद्धि का ही प्रदर्शन कराना है।

शङ्का नं० ७—इस शङ्का में कई लोग तो भिन्नमाल के परमार राजाओं की शोध कर वि० सं० १११३ का कृष्णराज परमार का शिलालेख आगे रख कर कहते हैं कि इसके पूर्व भिन्नमाल में परमारों का राज नहीं था। इसलिए वि० पूर्व ४०० वर्ष में उत्पलदेव परमार ने श्रीमाल से आकर उपकेशपुर बसाया यह सिद्ध नहीं होता है, और कई एक लोगों का कहना है कि ओशियां का बसाने वाला आबू का उत्पलदेव परमार ही है, जिसका समय वि० की दशवीं शताब्दी का है। इन दोनों का तात्पर्य यह हो सकता है कि जो पट्टावलियों में भिन्नमाल टूट के ओसियों बसना लिखा है यह गलत है। क्यों कि वि० सं० १११३ के पहिले भिन्नमाल में परमारों का राज नहीं था। और दूसरा आबू के उत्पलदेव परमार ने ओसियो बसाई, जिसका समय विक्रम की दशवीं शताब्दी है, इसलिए ओसवालों की उत्पत्ति इसके बाद की होनी चाहिए ?

समाधान—इन दोनों नृपतियों के शिलालेख बड़ी खोज से प्राप्त हुए और बड़े महत्व के हैं, पर ओसवालों की उत्पत्ति के विषय में इनका प्रमाण देना केवल हास्यास्पद ही है, कारण जब ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा ओसवालों की उत्पत्ति का समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक प्रमाणित है तो फिर दशवीं शताब्दी के पश्चात् ओसवालों की उत्पत्ति का अनुमान करके इतिहास के नाम पर जनता को भ्रम में डालना इतिहास की अवलेहना नहीं तो और क्या है ? ।

प्रथम तो किसी ग्रन्थ या पट्टावलियों में यह लिखा नहीं मिलता है कि वि० पूर्व ४०० वर्ष में भिन्नमाल में परमारों का राज था, तथा ओसियों परमारों ने ही बसाई थी। दूसरा यह भी किसी स्थान पर नहीं लिखा है कि आबू के उत्पलदेव परमार ने विक्रम की दशवीं शताब्दी में ओसियां नगरी बसाई थी, अतः यह बात भी प्रामाणिक नहीं है, फिर केवल भ्रमता में पड़ कर अपने माने हुए अनुमान से ही इतिहास का खून करना क्या यही ऐतिहासिकता है ? ।

असली तात्पर्य यह है कि—उपकेशपुर, उपकेशवंश और उपकेशगच्छ ये बहुत पुराने हैं। जैन ग्रंथ और पट्टावलियों में इनका अस्तित्व समय विक्रम पूर्व ४०० वर्ष का है, और ऐतिहासिक प्रमाणों से भी

इनका अस्तित्व काल विक्रम की ५ वीं शताब्दी (हमारी शोध से पहिली दूसरी शताब्दी) का प्रमाणित हुआ है अब आगे ज्यों ज्यों शोध कार्य से ऐतिहासिक साधन उपलब्ध होंगे त्यों त्यों इनकी प्राचीनता पर भी प्रकाश पड़ेगा।

शङ्का नं० ८—कई लोग तो यहां तक कह देते हैं कि ओसवालों की उत्पत्ति न तो उपकेशपुर से हुई और न रत्नप्रभसूरि द्वारा, यह तो पश्चिम दिशा से आई हुई एक जाति है।

समाधान—यह शङ्का केवल द्वेष और पक्षपातपूर्ण है, क्योंकि यदि ऐसा नहीं है तो इस जाति का नाम ओसवाल और उपकेशवंश क्यों है? यह स्पष्ट बतला रहा है कि इस जाति के साथ उपकेशपुर और उपकेशगच्छ का घनिष्ट सम्बन्ध है—

क्योंकि–यह नाम अनेक प्राचीन ग्रन्थ, पट्टावलियों, वंशावलियों, चरित्रों और शिलालेखों में लिखा मिलता है—फिर इस नाम का क्या अर्थ हो सकता है? शङ्काकर्त्ता महाशय, यदि अपनी कल्पना को जनता के सामने रखने के पहिले, यदि इस जाति के उद्भवस्थान, समय और प्रतिबोधक आचार्य के लिए कुछ यथोचित प्रमाण ढूँढ लेते तो अच्छा होता, कारण सभ्य समाज ऐसी लीचर मनगढन्त कल्पना की कोई कीमत नहीं करते हैं, केवल हास्यपात्र ही समझ यों ही ठुकरा देते हैं।

पूर्वोक्त इन आठों शङ्काओं का समाधान करने के पश्चात् हम कितनेक ऐसे प्रमाणों का उल्लेख करना यहाँ उचित समझते हैं—जिनसे वास्तव में वस्तु स्थिति का ज्ञान हो सके और सभ्य समाज उपकेशवंश अर्थात् ओसवंशोत्पत्ति के समय का निर्णय कर सकें।

इतिहास का विषय कोई खण्डन मण्डन का विषय नहीं है अपितु किसी भी वस्तुतत्त्व का मान्य प्रमाणों से ठीक निर्णय करने का विषय है। इस विषय में लेखक को मेरा कथन सो सत्य इसे छोड़ 'सत्य सो मेरा कथन, इस पाठ को अपना कर्त्तव्य बनाना चाहिये। इतिहास का विषय ज्यों ज्यों उसकी समालोचना प्रत्यालोचना होती है, त्यों त्यों परिस्फुट होता है। अतः इसी लक्ष्य-बिन्दु को ध्यान में रख मैंने इस महत्व के विषय में हस्तक्षेप किया है विद्वद्वन्द्य पाठक त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा करेंगे।

ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

उपकेशवंश (ओसवाल) उत्पत्ति विषयक

'प्रमाण'

यदि हम किसी भी पदार्थ के नाम का निर्णय करना चाहें तो पहिले उसकी मूलस्थिति को देखना जरूरी है, क्योंकि हरेक पदार्थ का नाम कुछ २ समय बीतने पर नामाऽन्तरित हो जाता है, जैसेः—विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व आचार्यश्रीरत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में जैनेतरों को जैन बना के एक 'महाजन-संघ', स्थापित किया था। अनन्तर कई शताब्दियें बीतने पर उसका नाम उपकेशवंश हुआ, और वही कालान्तर में 'ओसवाल' नाम से प्रसिद्ध हुआ, इस प्रकार एक ही महाजन-संघ कालक्रम से तीन नामों से संसार में विश्रुत हुआ, ठीक यही हाल अन्य नामों का भी होता है। यदि कोई व्यक्ति वर्तमान ओसवाल जाति की उत्पत्ति का सम्यग् अन्वेषण करें तो, जिस शताब्दी में इस जाति का नाम पूर्ववर्ती नामों से बदल कर ओसवाल हुआ, उस शताब्दी से पूर्व इस जाति का ओसवाल नाम से कोई इतिहास नहीं मिलेगा, इसी तरह यदि उपकेशवंश का पता लगाना चाहे तो जिस शताब्दी में इसका नाम उपकेशवंश हुआ उस शताब्दी से पहिले का उपकेशवंश का इतिहास भी अप्राप्य हो रहेगा, यह बात बहुत ठीक भी है क्योंकि जिसका जन्म ही नहीं उसका इतिहास कैसे बन सकता है ? और जब इतिहास घटना ही नहीं तो फिर उसका अन्वेषण करना "खरगोश के शिर सींग ढूँढना ही है।" अर्थात् व्यर्थ है, अतः हमें यदि ओसवालवंश का वास्तविक इतिहास खोजना ही है तो पहिले इसके नाम-विपर्यय का निर्णय कर, इसके पूर्व पूर्वतरवर्त्ती नामनिर्दिष्ट जाति के इतिहास का अन्वेषण करना चाहिए, अर्थात् यदि सर्व प्रथम महाजन-संघ की शोध की जाय तो असली वस्तु का पता मिल सकता है। कारण इस संघ की स्थापना विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व हुई थी, बाद में इस संघ के लोग उपकेशपुर का त्याग कर अन्य नगरों में जा बसे, इससे कुछ

समय के बाद इनको उपकेशपुर से आने के कारण अन्य लोग उपकेशी कहने लगे। जैसे—श्रीमाल नगर से श्रीमाली, माहेश्वरी नगरी से महेश्वरी, खण्डवा से खण्डेवाल, रामपुरा से रामपुरिया, नागपुर से नागपुरिया और पाली से पल्लीवाल हुए; इसी भाँति ये उपकेशपुर से आने के कारण उपकेशी हुए। इनका यह नाम परिवर्तन का समय विक्रम की पहली या दूसरी सदी का है पर हम यदि प्रमाण ढूंढ़ना चाहें तो, पहली, दूसरी सदी के प्रमाण नहीं किन्तु तीसरी या चौथी सदी के ही ढूंढ़ने चाहिए, कारण जब इस महाजन संघ का नाम जन समाज में उपकेशी या उपकेश वंश प्रसिद्ध हुआ होगा तो कोई प्रचलित होते ही तो इतिहास-पलट कर अङ्कित नहीं हुआ होगा ? इसे प्रचलित होने को कम से कम एक या दो शताब्दीयें अवश्य होनी चाहिए ताकि सर्वसाधारण में अविरुद्धगति से इस नाम का प्रचार हो जाय। अतः उपकेश वंश की उत्पत्ति के लिए विक्रम की तीजी या चौथी शताब्दी के प्रमाण खोजने चाहिए, और वे प्रमाणिक भी कहे जा सकते हैं, इसके पहले के प्रमाण खोजना केवल श्रम ही सिद्ध होता है। उपकेशवंशोत्पत्ति के प्रमाण विक्रम को तीसरी या चौथी शताब्दी के ही मिलने पर हम यह नहीं कह सकते कि इस जाति की मूल उत्पत्ति का समय भी यही है ? क्योंकि जैसे एक जन समूह चार पाँचसौ वर्ष रामपुरा में रहा और बाद में वहाँ से रवाना हो श्रीनगर को चलागया तो श्रीनगर के लोग कई समय के बाद में उन्हें रामपुरिया कहेंगे, परन्तु कालान्तर में इन रामपुरियाओं का समय निर्णय करना हो तो श्रीनगर में बसने से पूर्व का किया जाय या पीछे का ? क्योंकि श्रीनगर में बसने के पूर्व तो रामपुरिया नाम का जन्म ही नहीं हुआ था इस हालत में नाम की खोज करना व्यर्थ ही है। हाँ रामपुरा का त्यागकर श्रीनगर में बसने के बाद कितनेक समय पश्चात् के प्रमाण मिल सकेगा। परन्तु हम यह नहीं कह सक्ते हैं कि उस मूल समूह के अस्तित्व का ही यह समय है ? नहीं ! उनका अस्तित्व श्रीनगर में बसने के पूर्व अन्य नाम से जरूर था। यह अवश्य ही मानना पड़ेगा इसी भांति उपकेश वंश को समझना चहिए कि मूल समूह तो इनका भी उपकेशपुर में ही बना बाद में वहाँ से विछुड़ने पर लोग इन्हें उपकेश वंशी कहने लगे, और

इसका समय हम ऊपर लिख आये हैं। अब रहा ओसवाल नाम का निर्णय सो यह तो स्वयं सिद्ध है कि ओसवाल नाम उपकेश वंश का अपभ्रंश है और इसका समय विक्रम की बारहवीं सदी के आसपास का है, इसका मूल कारण उपकेशपुर नगर का अपभ्रंश "ओशियों" होना है। इस विषय में विशेष प्रमाणों की कोई आवश्यकता नहीं है। कारण प्राचीन ग्रंथों और शिलालेखों में इस नगर का नाम उपकेशपुर और इस जाति का नाम उपकेश वंश मिलता है, और इसके अस्तित्व के ऐतिहासिक प्रमाण विक्रम की पाँचवी शताब्दी तक के मिल सकते हैं।

कई एक लोगों का यह भी ख्याल है कि जैन ग्रंथकारों के पिछले समय में लिखे हुए ग्रंथों में सत्यता का अंश बहुत कम और अतिशयोक्ति अत्यधिक है। इसलिए ऐतिहासिक प्रमाणों में इनका कोई विश्वास नहीं, पर हम इस कथन से सर्वांश सहमत नहीं है। कारण पूर्वाचार्यों के ग्रंथों में अतिशयोक्ति भले ही हो पर वे सर्वथा निराधार भी नहीं है। मूल घटना और ग्रंथ निर्माण के बीच में कितने ही समय का अन्तर है पर इससे वे ग्रंथ सर्वथा निर्मूल नहीं हो सकते। क्योंकि उन्होंने जो कुछ लिखा है वह भी किसी न किसी आधार से ही लिखा है। और उनका लिखना प्रायः सत्य ही है। यदि हम ग्रंथों पर कोई विश्वास न रक्खें तब तो हमारा इतिहास नितान्त अंधेरे में ही रहेगा। अतः यदि किसी लेख में कोई तरह की त्रुटि हो तो उसका संशोधन करना हमारा कर्त्तव्य है। किन्तु उसका एकदम बहिष्कार करना हमारे लिए बहुत हानिकारक है।

आज मैं उपकेश वंश (ओसवाल) की उत्पत्ति के कतिपय प्रमाणों का संग्रह कर विद्वद् समाज की सेवा में उपस्थित करता हूँ। यद्यपि एक विशाल वंश के लिए मेरे चुने ये प्रमाण पर्याप्त तो नहीं होंगे, फिर भी आज तक जो ओसवालोत्पत्ति का इतिहास अन्धकार में था उस पर जरूर (नहीं की अपेक्षा थोड़े कुछ प्रमाण भी) अच्छा प्रकाश डालेंगे। और यह बात मानने में भी किसी तरह का कोई सन्देह नहीं रहेगा कि मूल महाजन वंश की उत्पत्ति विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व में हुई थी, और उपकेश वंश एवं ओसवाल वंश ये उसी महाजन वंश के कालक्रम से पड़े उपनाम हैं। अस्तु ! आगे ज्यों ज्यों शोध होती रहेगी त्यों त्यों

इस विषय पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ता जायगा। और हमारे पूर्वाचार्यों की मान्यता सत्य की कसोटी पर खरी मालूम होगी। कहा है कि "पुरुषार्थेण सिद्धिः" याने प्रत्येक व्यक्ति को शुद्ध भावों से पुरुषार्थ करता रहना चाहिए, इसी में कार्य की सिद्धि है। क्रमधिकम्।

१—उपकेश वंश की उत्पत्ति वीरात् ७० वर्ष अर्थात् विक्रम पूर्व ४०० वर्ष होने के विषय में जो प्रमाण मिला उसको यह उध्धृत कर देते हैं।

अस्ति स्वस्ति चक्रवद् भूमेर्मरु देशस्य भूषणम्।
निसर्ग सर्ग सुभग, मुपकेशपुरं वरम् ॥१८॥

'मार्गाः' यत्र सदारामाः, अदाराः मुनिसत्तमाः।
विद्यन्ते न पुनः कोऽपि, तादृग पौरेषु दृश्यते ॥१९॥

यत्र रामागतिं हंसाः, रामाः वीक्ष्य च तद्गतिम्।
विनोपदेश मन्योऽन्यं, तां कुर्वन्ति सुशिक्षिताम् ॥२०॥

सरसीषु सरोजानि, विकचानि सदाऽभवन्।
यत्र दीप्तमणि ज्योति,-र्ध्वस्त रात्रितमस्त्वतः ॥२१॥

निशासु गतभर्तृणां, गृहजालेषु सुभ्रुवाम्।
प्राप्ता श्चन्द्रकराः कामा क्षिप्ताः रूप्याः शराइव ॥२२॥

यत्रास्ते वीर निर्वाणात् सप्तत्या वत्सरैर्गतैः।
श्रीमद्रत्नप्रभाचार्यैः, स्थापितं वीर मन्दिरम् ॥२३॥

तदादि निश्चलासीनो, यत्राख्याति जिनेश्वरः।
श्री रत्नप्रभसूरीणां, प्रतिष्ठाऽतिशया जने ॥२४॥

यत्र कृष्णाऽगुरुद्धूत,-धूमश्यामालित त्विषा।
सदैव ध्रियते तस्मान्न भासा श्यामलं वपुः ॥२५॥

मृदङ्ग ध्वनि माकर्ण्य, मेघ गर्जित विभ्रमात्।
मयूराः कुर्वते नृत्यं, यत्र प्रेक्षण कक्षणे ॥२६॥

प्रतिवर्षं पुरस्यान्त, र्यत्र स्वर्णमयो रथः।
पौराणां पाप मुच्छेत्तु, मिव भ्रमति सर्वतः ॥२७॥

विदग्धा नाम यत्रास्ते, वापी वापी न विभ्रमा ।
निम्नाऽधोऽधो गमिनीभि, र्याऽसौ सोपानपङ क्तिभिः ॥२८॥

यस्यां यैः कौतुकी लोकः, कृत कुङ्कुम हस्त कै ।
सौपानैर्यात्यधोभागं, न निर्यातिसतैः पुनः ॥२९॥

तत् पुरः प्रभावो वंश, ऊकेशाभिध उन्नतः ।
सुपर्वा सरलः किन्तु, नान्तः शून्योऽस्तियः क्वचित् ॥३०॥

तत्राऽष्टादश गोत्राणि, पात्राणी व समन्ततः ।
विभ्रान्ति तेषु विख्यातं, श्रेष्ठिगोत्रं पृथुस्थिति ॥३१॥

तत्र गोत्रेऽभवद् भूरि, भाग्य सम्पन्न वैभवः ।
श्रेष्ठी वेसट इत्याख्या, विख्यातः क्षिति मंडले ॥३२॥

य दत्त धन संतानै, र्निचितेष्वर्थिवेश्मसु ।
तन्नामा (तत्त्यागा) दिव दारिद्र्यं, त्वरितं दूरतोऽव्रजत् ॥३३॥

कीर्त्या यस्य प्रसर्पन्त्या, शुभ्रया भुवने विधूम् ।
विनाऽपि कौमुदीलासः, समजायत शाश्वतः ॥३४॥

यस्याः समोऽपिसोमोऽपि, न साम्यं समुपेयिवान् ।
ऐश्वर्येणाऽनुत्तरेण, सौम्यत्वेन नवेन च ॥३५॥

ऋद्ध्या समृद्धया येन, धनदेवेन (नेव)व(शी) लितम् ।
ले भे नतु कुबेरत्वं, न पिशाचकिताऽपि च ॥३६॥

कोऽस्याऽपूर्व स्तगदुणानां, स्वभावः प्रभवत्यम् ।
मनोऽन्य गुण सम्बद्धं, मोच यत्यपि विक्षितः ॥३७॥

(वि० सं० १३९३ कक्कसूरि कृत—श्लोक १८ से ३७ तक)

"नाभिनन्दन जिनोद्धार ग्रंथ"

उपरोक्त लेख का सारांश यह है कि वीर निर्वाणात् ७० वर्षे अर्थात् विक्रम पूर्व ४०० वर्षे मेंआचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महाजन वंश की स्थापना कर महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। आगे चल कर उस महाजन वंश में १८ गौत्र हुए जिसमें श्रेष्ठी गौत्री एक था

उसी श्रेष्टी गौत्र के अन्दर एक महान् सम्पतशाली कुवेर के सदृश उदार दानेश्वरी जगत्प्रसिद्ध 'वेसट' नाम का नररत्न पैदा हुआ जिसकी आठवीं पुश्त में 'समरसिंह' हुआ जिसने शत्रुंजय तीर्थ का पंद्रहवा उद्धार करवाया।*

वेसट श्रेष्टी का वंश वृक्ष निम्नलिखित है

वेसट—उपकेशपुर से किराट कूप (किराडू) में जाकर वास किया।
|
वीरदेव
|
जिनदेव
|
नागेन्द्र
|
सहत्रखण—इसने किराट कूप का त्याग कर प्रल्हादनपुर (पालनपुर) को अपना निवास स्थान बनाया।
|
अजड़
|
गोसल
|
देशल—इसने प्रल्हादनपुर को छोड़ पाटण में वास किया।
|
समरसिंह—इसने वि० सं० १३७१ में शत्रुंजय का पन्द्रहवां उद्धार कराके महान् पुण्योपार्जन किया।

(२) राजकुमार उत्पलदेव ने उपकेशपुर बसाया, उसमें अधिक लोग भिन्नमाल से हो आए थे, उनके गुरु श्रीमाली ब्राह्मण भी साथ में थे। जहां यजमान जावें वहां उनके गुरु भी जावें यह तो न्याय अनुकूल ही है। उस समय उन ब्राह्मणों का लाग दापा (धर्म-टैक्स) इतना सख्त था कि साधारण जनता से सहन नहीं हो सकता था। पर इन भूऋषियों की सत्ता के सामने कौन शिर ऊँचा कर सकता था? लाग दापा लिये बिना वे कोई भी क्रिया व विधि नहीं कराते थे, अत

*इस प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि वीरात् ७० वर्षे महाजन वंश (उपकेश वंश) की स्थापना हुइ जिसको आज २३९२ वर्ष हुई हैं।

एव दुनियाँ को विप्रों का हुक्म शिर चढ़ाना ही पड़ता था। उस समय का ही जिक्र है कि एक बार मंत्री ऊहड़ व्यापारार्थ भारत के बाहिर विदेशों में जा वापिस आया, ब्राह्मणों की भेट पूजा न होने से उन्हों ने यह घोषणा कर दी कि ऊहड़ म्लेच्छों के देश में हो आया है, इसलिये उसके यहाँ कोई भी ब्राह्मण किसी प्रकार की क्रिया नहीं करावे, इस दशा में मंत्री ऊहड़ ने ब्राह्मणों को बहुत लोभ बतलाया, अनेक कोशिशें कीं पर सब व्यर्थ हुए, सत्ता मद में उन्मत्त ब्राह्मणों ने उसकी एक नहीं मानी। कहा है "विनाश काले विपरीत बुद्धिः" तथा "अति सर्वत्रवर्जयेत्" इस कारण ब्राह्मणों के इस दुराग्रह से अपमानित एवं क्रुद्धित हो ऊहड़ ने विदेश से म्लेच्छों को द्रव्य देकर आमंत्रित किया, म्लेच्छों की सेना आकर ब्राह्मणों के अन्याय का बदला लेने को आक्रमण करने लगी, तब प्राण, और इज्जत की रक्षा के लिए सब के सब ब्राह्मण भीनमाल की तरफ चले गए। म्लेच्छों ने वहां भी उनका पीछा किया। आखिर विप्रों को लाचार हो यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि आज से हम उपकेशपुर वासियों से एक पैसा भी नहीं मांगेगें, इतना ही नहीं किन्तु आज से उनका हमारा गुरु-यजमान का सम्बन्ध भी टूटा समझा जायेगा। उसी दिन से उपकेश-पुरवासी और ब्राह्मणों का आपसी सम्बन्ध विच्छिन्न होगया। इस बात का उल्लेख भगवान् हरिभद्र सूरि ने अपनी "समराइच्च कहा,, नामक प्राकृत पुस्तक में किया है, उस कथा का सारांश लेकर आचार्य कनकप्रभसूरि ने संस्कृत में समरादित्य कथासार लिखा है, जिसका एक श्लोक नीचे उद्धृत है। आप लिखते हैं:—

"तस्मात् ऊकेश जातीनां, ब्राह्मणाःगुरवो नहि।
उएस नगरं सर्वं, कर रीण समृद्धिमत् ॥ ८ ॥
सर्वथा सर्वनिर्मुक्त, मुएस नगरं परम् ।
तदा प्रभृति संजात, मिति लोक प्रवीणकम् ॥ ९ ॥

इस लेख में बतलाए हुए ऊहड़देव मंत्री वही हैं जिन्होंने वीर निर्वाण से ७० वर्षों के बाद उपकेशपुर नगर में महावीर का मन्दिर बनाके आचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा कराई थी, वह मन्दिर आज भी विद्यमान है।

इस प्रमाण से स्पष्ट पाया जाता है कि "ब्राह्मणश्च जगद्गुरुः,, आर्यावर्त्त में सर्वत्र सब के गुरु ब्राह्मण ही समझे जाते थे, परन्तु ऊहड़ मंत्री के समय से जैन जातियों के साथ ब्राह्मणों का सम्बन्ध टूट गया। जो आज पर्यन्त भी जैन जाति और ब्राह्मणों का गुरु यजमान का सम्बन्ध नहीं है यदि उपरोक्त बात सत्य है तो उपकेश वंश की उत्पत्ति का समय वीरात् ७० वर्ष बाद का मानने में किसी तरह का सन्देह नहीं रहता है।

(३) उपकेशपुर में महावीर का मन्दिर के साथ ही साथ कोरंटकपुर में श्रीमहावीर मन्दिर की शुभ प्रतिष्ठा आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने करवाई का उल्लेख प्रचानी ग्रन्थों में मिलते हैं और इस बात को प्रमाणित करने वाला एक लेख प्रभाविक चरित्र में भी मिलता है जो की कोरण्टकपुर में महावीर के मन्दिर की प्राचीनता पर ठीक प्रकाश डालता है "तथाश्च,,।

"अस्ति सप्तशती देशो, निवेशो धर्म कर्मणाम्।
यदानेशभिया भेजु,स्ते राज शरणं गजाः ॥ ४ ॥
तत्र कोरण्टकं नाम, पुर मस्त्युन्नता श्रयम्।
द्विजिह्वविमुखा यत्र, विनता नन्दना जनाः ॥ ५ ॥
तत्रा ऽस्ति श्री महावीर चैत्यं चैत्यं दधद् दृढम्।
कैलास शैलवद्भाति, सर्वा श्रयतया ऽनया ॥ ६ ॥
उपाध्यायो ऽस्ति तत्र श्री देवचन्द्र इति श्रुतः।
विद्वद्वृन्द शिरोरत्न, तमस्ततिहरो जनैः ॥ ७ ॥
आरण्यक तपस्यायां, नमस्यायां जगत्यपि।
सक्तः शक्तान्त रंगा ऽरि-विजये भव तीर भूः ॥ ८ ॥
सर्वदेवप्रभु, सर्वदेव सत्ध्यान सिद्धिभृत्।
सिद्ध क्षेत्रे यियासुः श्री वाराणस्याः समागमत् ॥ ९ ॥
बहुश्रुत परिवारो, विश्रान्त स्तत्र वासरान्।
काँश्चित् प्रबोध्य तान्, चैत्य व्यवहार ममोचयत् ॥१०॥

स पारमार्थिकं तीव्रं, भत्ते द्वादशधा तपः।
उपाध्यय स्ततः सूरि, पदे पूज्यैः प्रतिष्ठितः॥ ११॥
श्री देवसूरि रित्याख्या, तस्य ख्यातिं ययौ किल।
श्रूयन्ते ऽद्यापि वृद्धेभ्यो, वृद्धा स्ते देव सूरयः॥१२॥

"प्रभाविक चरित्र मानदेव प्रबन्ध पृष्ट १९१,,

भावार्थः—धर्म कर्म का निवास स्थान रूप एक सप्तशति नामक देश है जहां दान दाताओं के भय से तत्रत्य गज मानों राजा की शरण गए हैं। उस देश में एक अत्यन्त उन्नति शील कोरण्टक नाम का नगर है वहां के पुरुष विनत (नम्र) जनों को आनन्द देने वाले और द्विजिह्वों-दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं। उस नगर में एक बड़ा दृढ श्री महावीर का विशाल चैत्य (मन्दिर) हैं जो सबको आश्रय देने से कैलाश के समान शोभता है। उस चैत्य में लोक प्रसिद्ध, अज्ञानाऽन्धकार दूर करने वाले, विद्वत् शिरोमणि देवचन्द्र नाम के उपाध्याय प्रतिष्ठित हैं। एक समय का जिक्र है कि जगत् पूज्य आरण्यक (घोर) तपस्या में आसक्त हृदयान्तर्गत समर्थ शत्रुओं के जीतने में लगे हुए हैं और संसार समुद्र से पार गए हुए हैं। ऐसा महापुरुष भगवान् सर्वदेवसूरि सर्वज्ञ के सत् ध्यान और सिद्धि को धारण कर श्री वाराणसी (काशी) नगरी से सिद्धक्षेत्र को जाने की इच्छा से बहुत श्रुतज्ञ (पठित) परिवार (शिष्य मण्डली) सहित श्री सर्वदेव सूरि एक दिन वहां (कोरंटकपुर में) आए और कुछ दिन वहां निवास कर तत्रत्य श्री देवचन्द्र उपाध्याय का धर्म का प्रबोध कर उनसे चैत्य निवास छुड़वाया। श्री देवचन्द्र उपाध्याय भी तब से बारह प्रकार के पारमार्थिक तीव्र तप को करने लगे, तब आचार्य श्री सर्वदेव सूरि ने देवचन्द्र उपाध्याय को सूरि-पद पर प्रतिष्ठित किया। और उसके बाद उन उपाध्याय जी का देवसूरि यह आख्या (नाम) प्रसिद्ध हुई यह बात आज श्री वृद्ध पुरुषों के मुख से सुनते हैं कि वे देवसूरि भी वृद्ध हैं।

विशेषः—देवचन्द्र सूरि के पट्ट पर प्रद्युम्न सूरि और इनके पट्ट पर मानदेव सूरि हुए। मानदेव सूरि वीरके २० पट्टपर और इनका समय वीर से ७३१ वर्षों के बाद का है। जब तीन पाट का १०० वर्ष बाद कर दिया दिया तो देवचन्द्रोपाध्याय का समय ६३१ का होता है। वीर से सातवीं

शताब्दी में महावीर के मन्दिर की व्यवस्था देवचन्द्रोपाध्याय करते थे इससे यह मन्दिर बहुत प्राचीन सिद्ध होता है। पट्टावलियों से कोरंटक पुर में वीर से ७० वर्ष बाद आचार्य रत्नप्रभसूरि ने महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा की यह स्पष्ट प्रमाणित होता है। वस्तुतः देवचंद्रोपाध्याय के समय में कोरण्टकपुर में महावीर का मन्दिर था और इसी की प्रतिष्ठा श्री रत्नप्रभसूरि ने की हो तो कोई आश्चर्य नहीं॥

कोरण्टकपुर की प्राचीनता के और भी प्रमाणः—

"उपकेश गच्छे श्री रत्नप्रभसूरिः येन उसिया नगरे कोरंटक नगरे च समकालं प्रतिष्ठा कृता रूपद्वयकरणेन चमत्कारश्च दर्शितः,,

(कल्पसूत्र की कल्प द्रुम कलिका टीका के स्थविरावली अधिकार में

"कोरिंट सिरिमाल धार आहडु न राणउ"

(वि० सं० १०८१ में धनपाल कवि कृत सत्यपुरीय श्री महावीर उत्साह नामक ग्रन्थ में कोरंटा की प्राचीनता)

"पचिनपुरा की छावनी से ३ कोश के लगभग कोरंट नाम का नगर उजाड़ पड़ा है, जिस जगह कोरंटा नाम से आजकल गाँव बसा है वहाँ भी श्रीमहावीरजी की प्रतिमा व मंदिर की प्रतिष्ठा श्रीरत्नप्रभसूरिजी की कराई हुई अब विद्यमानकाल में मोजूद और वह मन्दिरखड़ा है"

(जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर के पृष्ठ ८१ में श्री आत्माराम जी)

(४) वीरात् ७० वर्षे महाजन संघ का स्थापना विषय प्रमाणः—

ततः श्रीमत्युपकेश, पुरे वीरजिनेशितुः ॥
प्रतिष्ठां विधिना ऽऽधाय, श्री रत्नप्रभसूरयः॥ १८५ ॥
कोरण्टक पुरे गत्वा, व्योम मार्गेण विद्यया ॥
तस्मिन्नेव धनुर्लग्ने, प्रतिष्ठां विदधुर्वराम् ॥ १८६ ॥
श्री वीर निर्वाणात्सप्त, तिसंख्यैर्वत्सरै र्गतैः ॥
उपकेशपुरे वीरस्य, सुस्थिरा स्थापनाऽजनि ॥ १८७॥

भूयो ऽपि व्योमयानेन, तत्र चागत्य सूरयः ॥
श्रेष्ठिनं बोधयामासु, र्जिन स्नानार्चन क्रियाम्॥ १८८॥
सक्रमा दूहड़ःश्रेष्ठी, जिन धर्मधरो ऽभवत् ॥
शुद्ध सम्यक्त्व भृद्, यस्य परिवारो ऽपिचाऽभवत्॥ १८९।
श्री रत्नप्रभसूरीणां मागत्याऽऽगत्य तस्थुषाम् ॥
मासकल्पा अनेके च, व्यतीयुः कल्पसेविनाम्॥ १९०॥
एवं तत्र पुरे पूज्याः, संस्थिता वणिजा मथ ॥
अष्टादश सहस्राणि, जङ्घानां प्रत्यबोधयत् ॥१९१॥

"नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रस्ताव दूसरा"

भावार्थः—तदनन्तर श्रीरत्नप्रभसूरिजी ने श्री सम्पन्न उपकेशपुर (ओशियाँ) में भगवान् वीरजिनेश्वर की यथा विधि प्रतिष्ठा करके, विद्या बल द्वारा, आकाश मार्ग से कोरण्टकपुर में जाकर वहाँ भी उसी धनुर्लग्न में श्री वीर जिन की शुभ प्रतिष्ठा की। इस प्रकार श्री महावीर के निर्वाण समय के अनन्तर सित्तर ७० वर्ष बीत जाने पर उस उपकेशपुर में महावीर की बिम्ब स्वरूप सुस्थिर स्थापना हुई, और फिर वहाँ से व्योमयान द्वारा आकर श्री सूरिजी ने सेठ को भगवान् जिनकी स्नात्र, अर्चन क्रिया समझाई। वह सेठ अनुक्रम से शुद्ध सम्यक्त्व को धारण कर सपरिवार जिन धर्म का अनुयायी हुआ। श्री रत्नप्रभसूरिजी वारंवार वहाँ आकर और कुछ काल रहकर कई मास कल्प बिताते थे। वहाँ रहकर सूरिजी ने और भी अट्ठारह हजार सङ्घ (जङ्घ)क्षत्रिय और वैश्यों को जैन धर्म की दीक्षा दी।

इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि वीर से ७० वर्ष बीतने पर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई, और ऊहड़ सेठ आदि हजारों क्षत्रियों एवंवैश्यों को जैन बनाया।

(५) आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाने के बाद भी उपकेशपुर में पधार कर और लोगों को भी जैन बनाया इस विषय में कहा है कि—

"तदा मुख्य ब्राह्मणस्य, धन कोटीशितुः सुतः ॥
दुष्ट कृष्णा ऽहिना दष्टो, मृत कल्प इवा ऽभवत् ॥ ८७ ॥
पिता ऽगदै र्जाङ्गुलिकैः, उपाचरत्समादरात् ॥
धनै रुपायै स्तद् व्यर्थ, मासी दिव खले कृतम् ॥ ८८ ॥
शिविकायां तमारोप्य, क्रन्दन्तः शोक विह्वलाः ॥
पितृ प्रभृतयो विप्रा, श्मेलु; प्रेतवनोपरि ॥ ८९ ॥
धर्मोन्नत्यै सूरयोऽपि, तं विदित्वा सजीवितम् ॥
शीघ्र माकारयामासु, स्तत्तातं शोकसंकुलम् ॥ ९० ॥
पूज्यै रुक्तं त्वत्सुत श्चे, दुज्जीवति ततो भवान् ॥
किं करोति ? स आह त्वत्किंकरो जीविताऽवधि ॥ ९१ ॥
सकुटुम्बस्य मे पूज्यै र्दत्तं स्याज्जीवितं तथा ॥
किमन्यत् त्वं पिता माता, त्वं स्वामी त्वं च देवता ॥ ९२ ॥
स्वपाद क्षालन जलं, दत्त्वा प्रैषीत्ततो द्विजम् ॥
शिविकायाः समुत्तार्या, ऽभ्यषिञ्चत् सर्वतः सुतम् ॥ ९३ ॥
पीयूषेण व तेनाऽथ, संसिक्तः पाद वारिणा ॥
विषमुक्तः समुत्तस्थौ, गतनिद्र इवाङ्गवान् ॥ ९४ ॥
किमेत दिति पृच्छन्तं, तात स्तं सुत मब्रवीत् ॥
वत्स ! स्वच्छाशय ! भवान्, यम मुख गतोऽभवत्
(यमस्य मुखतोऽभवत्) ॥ ९५ ॥

परं कृपावारिधिभिः, सूरिभि र्गुणभूरिभिः ॥
वितीर्ण सकुटुम्बस्य,तवमेऽपिच जीवितम् ॥ ९६ ॥
इति श्रुत्वा (सरसरां) समुत्थाय विवन्दिषुः ॥
गुरून् गुणगुरून् विप्रः सर्व विप्रसमन्वितः ॥ ९७ ॥
भूपीठे विलुठन् भक्त्या, सूरीन् वीक्ष्य ससादरम् ॥
पादौ ववन्दे मौलिस्थ, केशप्रोञ्छन पूर्वकम् ॥ ९८ ॥

अवादी दद्य भगवन्! जीवितं ददता मम ॥
विप्र श्रमणयो र्वैर, मिति मिथ्याकृतं वचः ॥ ९९ ॥
इतः प्रभृति नः पूज्याः, गुरवो वणिजा मिव ॥
अन्यै रपि तदा विप्रै, स्तदुक्तं बहुमन्यत ॥ १०० ॥
तदा प्रभृति सर्वेऽपि, ब्राह्मणाः श्रावका इव ॥
तद्गौरवं विदधिरे, तदाज्ञां नाव मेनिरे ॥ १०१ ॥
एवं प्रभावयन्तस्ते, सूरयो जैन शासनम् ॥
अष्टादश सहस्राणि, जङ्घानां (जंघानां) प्रत्यबोधयत् ॥ १०२॥

"उपकेश गच्छ चरित्र श्लोक ८७ से १०२"

भावार्थः—"—उस समय दैव संयोग से ब्राह्मण श्रेष्ठ-एक कोट्यधीश ब्राह्मण के इकलौते पुत्र को काले साँप ने डस लिया और वह बेहोश होगया उसके पिता ने विषवैद्यों (गारुडिकों) द्वारा, जड़ी बूँटियों से, तथा नाना प्रयत्नों से अनेक उपचार किए परन्तु वे सब दुष्ट के साथ किए गए उपकार के सदृश व्यर्थ हुए, तदनन्तर शोक विह्वल हो उसके पिता ने उसे पालकी में रक्खा; और उसके कुटुम्बी ब्राह्मण रोते हुए उस शव को ले श्मशान घाट गए। सूरिजी ने समाधि द्वारा उस ब्राह्मण पुत्र को जीवित जान धर्म की उन्नति के लिए शोक संतप्त उस ब्राह्मण को जल्दी अपने पास बुलाया और कहा—हे ब्राह्मण प्रवर! यदि तेरा पुत्र मेरे मन्त्रों से पुनः सचेत होजाय, तो बदले में तूँ क्या करेगा?—उसने उत्तर दिया मैं आज से आपका दास बन कर रहूँगा-और ऐसा मानूँगा मानों पूज्य आपने मुझ सकुटुम्ब को जीवन दान दिया हो-हे आचार्य प्रवर! ज्यादा क्या कहूँ आप ही मेरे मा बाप और स्वामी देवता हैं। ब्राह्मण की यह नम्र प्रार्थना सुनकर सूरिजी ने अपने पैर धोकर वह जल उस ब्राह्मण को देकर भेजा उसने अपने मृत-प्राय (मूर्छित) पुत्र को शिविका से नीचे उतार उस जल से अभिषिक्त किया (छींटा) अमृत वर्षण के समान उस पादक्षालन जल से अभिषिक्त वह ब्राह्मण एक दम उठ बैठा—मानों नींद से जगा हुआ प्राणी उठा हो, और उसने उठकर उस जनसमुदाय और श्मशान आदि को

देखकर पिता श्री से पूछा कि यह क्या है ? तब उसने पुत्र को उत्तर दिया बेटा ! तूँ स्वस्थ हो ! अभी तूँ मृत्यु के मुख में चला गया था; परन्तु कृपासागर,, गुण आगर इन पूज्य श्री सूरिजी ने तुझको और सकुटुम्बादि मुझको पुनर्जीवन लाभ कराया है। इसे सुन सब ब्राह्मणों सहित वह कुमार उठ कर नमस्कार करने की इच्छा से गुण गम्भीर गुरुजी के पास गया और उनके पैरों तले मस्तक टेक कर उन्हें सादर प्रणाम करने लगा।

उस कुमार ने कहा—प्रभो ! आज मुझको जीवनदान देकर आप ने "ब्राह्मण और जैन साधु के बैर वाली" कहावत को मिथ्या कर दिया है, हे गुरो ! आज से आप श्रावक वैश्यों के समान हम ब्राह्मणों के भी पूज्य हैं—यह बात अन्य तत्रस्थ ब्राह्मणों ने भी कही। उस दिन से लेकर ब्राह्मण भी वैश्यों के समान उनका आदर करने लगे और उनकी आज्ञा मानने लगे—सूरिजी इस तरह अपने जैन शासन का प्रभाव फलाते वहाँ से अगाड़ी गए और १८ हजार जंघों (संघ) को भी जैन धर्म का प्रतिबोध किया।

उपकेश चरित्र श्लोक ८७ से १०२

पहिले जो राजा उत्पलदेव के जमाई तिलोकसिंह को साँप काटना और आचार्य श्री के चरणप्रक्षालन के जल से विष उतर जाना और इस लेख में ब्राह्मण पुत्र को साँप काटना और प्रक्षालन के जल से निर्विष होना इन दोनों घटनाओं के समान होने से दोनों को एक मानने की कोई व्यक्ति भूल न करे। कारण राजा के जमाई की घटना उपकेशपुर में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा पूर्व की हैं और ब्राह्मण पुत्र की घटना प्रतिष्ठा बाद की है। ब्राह्मण पुत्र के अधिकार में लिखा है कि जैसे वैश्य लोग आपके श्रावक हैं वैसे हम भी हैं इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण पुत्र वाली घटना के पूर्व उपकेशपुर में श्रावक बन चुके थे और उन्होंने ही महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई थी अतएव पूर्वोक्त दोनों २ घटनाएँ अलग अलग ही समझना चाहिये। और ऐसा होना असंभव भी नहीं है जहाँ जिसका उदय होना होता है तब कोई न कोई निमित्त कारण मिल ही जाता है। खैर ! कुछ भी हो पर यह घटना वीरात् ७० वर्ष की अवश्य है।

(६) कलकत्ते के पुरातत्व विभाग ने शोध (खोज) एवं खुदाई का काम करते समय एक जैन मूर्त्ति प्राप्त की है, जिस पर शिलालेख भी अङ्कित है, पर वह पुराणा होने से बहुत जगह से खण्डित होगया है। फिर भी उस लेख में वीरात् ८४ वर्ष एवं श्री श्रीवंस जाति का नाम स्पष्ट दीखता है। अर्थात् श्री श्रीवंस जाति के किसी भावुक ने वीरात् ८४ वर्ष वीतने पर यह मूर्त्ति बनाई होगी? श्री श्रीवंस जाति किस वर्ण की थी इसकी जाँच करने पर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का एक शिलालेख मिलता है उसमें श्रीवंस जाति को उपकेश वंश की एक जाति बतलाई है। वह शिलालेख यहाँ उद्धृत किया जाता है।

"संवत १५३० वर्षे माघ शुद्धि १३ खंडे श्री श्रीवंशे श्रे० देवा० भा० पाचु पु० श्रे० हापा भा० पुहनी पु० श्रे० महिराज सुश्रावकेण भा० मातर सहितेन पितृ श्रेयसे श्री अंचलगच्छेश जयकेशरी सूरिणामुपदेशेन श्री सुमतिनाथ बिंबं प्र० श्री संघेन।

यदि ये दोनों श्री श्रीवंस जातिएँ एक ही है तो इस बात को मानने में भी कोई शङ्का की जगह नहीं रहती कि उपकेशवंश की उत्पत्ति वीरात् ७० वर्षों में हुई।

(७) उपकेशपुर के मन्दिर की प्रतिष्ठा वीरात् ७० वर्षों बाद हुई अनन्तर ३०३ वर्ष में महावीर की ग्रंथिछेदन का उपद्रव मचा। जिसकी शान्ति आचार्य श्री कक्कसूरि ने कराई यह विषय पट्टावली में निम्न लिखित प्रकार से उल्लेख मिलता है जो यहाँ उद्धृत है।

तद्यथाः—

"स्वयंभू श्री महावीर स्नात्र विधिकाले कोऽसौ विधिः कदा किमर्थं च सञ्जातः? इत्युच्यते। तस्मिन्नेव देवगृहे अष्टान्हिकादिक महोत्सवं कुर्वतां तेषां मध्ये अपरिणतवयसां केषांचित् चित्ते इयं दुर्बुद्धिः संजाता। यदुत भगवतो महावीरस्य हृदये ग्रंथिद्वयं पूजां कुर्वतां कुशोभां करोति, अतः मशक

रोगवत् छेदने (यितां) को दोषः ? । वृद्धैः कथितं—अयं अघटितो (बिम्बः) टंकनाघातं नार्हति । विशेषतस्तु अस्मिन् स्वयंभू महाबीर बिम्बेपरं वृद्ध वाक्य मवगणय्य प्रच्छन्नं सूत्र धारस्य (राय) द्रव्यं दत्वा ग्रन्थिद्वयं छेदितं, तत्क्षणादेव सूत्र धारो मृतः । ग्रन्थिच्छेदप्रदेशे तु रक्तधारा छुटिता । तत उपद्रवोज़ातः तदा उपकेशगच्छाऽधिपति श्री कक्कसूरयः ( ) चतुर्विध संघेनाऽऽहूतः । वृत्तान्तश्च कथितं । आचार्यैः चतुर्विधसङ्घ सहितैः उपवासत्रयं कृतं । तृतीयोपवास प्रान्ते रात्रि समये शासनदेव्या प्रत्यक्षीभूय आचार्याय प्रोक्तम् । हे प्रभो ! न युक्तं कृतं बालश्रावकैः मद् घटितं बिम्बं आशातितं (कलानिश) शकलानि कृतं ॥ अतोऽनन्तरं उपकेशनगरं शनैः उपभ्रंशं भविष्यति (गमिष्यति) गच्छे विरोधो भविष्यति, श्रावकाणां कलहो भविष्यति, गोष्ठिका नगरात् दिशोदिशं यास्यन्ति । आचार्यैः प्रोक्तं परमेश्वरि ! भवितव्यं भवत्येव परं त्वं श्रवत्तु रुधिरं निवारय–देव्या प्रोक्तम्—घृत घटेन, दधि घटेन,इक्षुरस घटेन दुग्ध घटेन,जल घटेन कृतोपवासत्रयं यदा भविष्यति तदा अष्टादश गोत्रमेलं कुरुत (तेमी) तातहड़गोत्रं (तप्तभट) बापणा-गोत्रं (बप्पनाग) कर्णाट गोत्रं, बलहगोत्रं, मोरखगोत्रं,कुलहट गोत्रं विरिहट गोत्रं, श्रीश्रीमाल गोत्रं, श्रेष्ठिगोत्रं, एते दक्षिण बाहौ । सूचंति गोत्रं, आइचणाग गोत्रं, भूरिगोत्रं, भद्रगोत्रं, चिंचट गोत्रं, कुंभट गोत्रं, कन्याकुब्ज गोत्रं, डिंडुभगोत्रं, लघु श्रेष्ठि गोत्रं एते वाम बाहौ । स्नात्रं कर्त्तव्यं । नान्यथा शिवा शान्ति भविष्यति ।

मूल प्रतिष्ठाऽनन्तरं वीर प्रतिष्ठा दिवसा दतीते शतत्रये (त्र्याधिके त्रिशते ३०३ वर्षे) अनेहसि ग्रंथियुगस्य वीरोरःस्थस्य भेदोऽजनि दैव योगात् इत्युक्तं ॥

श्रीमदुपकेशगच्छ चरित्र सूत्रे श्लोक १७२ "श्रीउपकेशगच्छ पट्टावलि"

भावार्थः—स्वयंभू श्री महावीर के स्नात्र (स्नान) समय की यह क्या विधि है ? और कब तथा किस लिए यह चालू हुई है ? इस विषय में कहा जाता है—कि आद्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरिजी ने सर्व प्रथम जिस मन्दिर में वीर की प्रतिष्ठा की थी उसी देवगृह में अष्ट अन्हिकादिक महान् उत्सव करते हुए, अपरिपक्व अवस्था वाले उन श्रावकों के मध्य में से किन्हीं श्रावकों के हृदय में यह कुबुद्धि उपजी कि भगवान् महावीर के वक्षःस्थल पर स्थित ये दो गांठे पूजा करने के समय बुरी मालूम होतीं हैं, अतः इन्हें तोड़ देना चाहिए, क्योंकि मिस्सा के रोग के समान दीखने वाली इन गांठों के तोड़ने में क्या दोष है ? यह सुन वृद्ध श्रावकों ने कहा—ऐसा करना अच्छा नहीं कारण भगवान् का यह प्राकृतिक बिम्ब टांकी की चोट देने लायक नहीं है। परन्तु उन कुबुद्धियों ने वृद्धों के वचन का तिरस्कार करके गुप्तरूप से एक सूत्रधार (कारीगर) को बहुत सा द्रव्य दे भगवान् की वक्षस्थल स्थित वे गाँठे तुड़वा दी। गांठों के तोड़ते ही कारीगर तो तत्क्षण वहीं गिर कर मर गया, और उस तूटे हुए स्थानसे अविरल रक्त धारा बहने लगी और प्रजा में बड़ी अशान्ति फैली, तब चतुर्विध सङ्घ के मनुष्यों ने मिल उपकेशगच्छ के अधिपति श्री कक्कसूरि को बुलावा भेजा और सारा वृत्तान्त निवेदन किया, भगवान् आचार्य श्री वहाँ पधार कर चतुर्विधि श्री संघ के साथ तीन दिन का उपवास किया, तृतीय उपवास की समाप्ति के समय रात के वख्त श्री शासनादेवी ने प्रकट हो आचार्य श्री के चरण में निदवेन किया कि हे स्वामिन् ! इन अबोध श्रावकों ने बहुत बुरा किया, (रत्नप्रभसूरि प्रतिष्ठित) मेरे निर्मित बिंब को खण्डित कर दिया, अब यह उपकेशपुर बर्बाद हो जायगा, गच्छ में विरोध पैदा होगा, श्रावकों में द्वेषाग्नि फैलेगी, और गोष्ठिका (मंदिरोंके कार्यकर्त्ता) नगर को छोड़ इधर उधर चले जायँगे, यह सुन आचार्यने प्रत्युत्तर दिया देवि—जो भवितव्यता होती है वह तो हो के ही रहती है, परन्तु अब भगवान् के इस रुधिर स्राव को रोको, देवी ने कहा, घी, दही, खांड, दूध, और जल के पाँच घड़े भरवा कर जब तीन दिन का उपवास कर चुको तब विधि पूर्वक शान्ति स्नात्र करवाना महावीर की बाँयी और दाँयी भुजा की ओर क्रम से इन

अठारह गोत्रों को "तारहड़ गोत्र, बाफणा गोत्र, कर्णाट गोत्र, बलह गोत्र, मोरखगोत्र, कुलहट गोत्र, विरिहट गोत्र श्री श्रीमाल गोत्र और श्रेष्टि गोत्र को तो दाहिनी भुजा पर और सूचंति गोत्र, आइचणाग गोत्र, भूरि गोत्र, भद्र गोत्र, चिंचट गोत्र, कुंभट गोत्र, कन्याकुब्ज गोत्र डिंडुभ गोत्र और लघु श्रेष्टि गोत्र ये वाम भुजा पर स्थापित कर स्नात्र कराना चाहिए इससे कल्याण और शान्ति होगी, प्रधान प्रतिष्ठा के बाद ३०३ वर्ष बीतने पर भगवान् वीर की वक्षः स्थित इन दोनों गांठों का दैवयोग से भेद हुआ है ऐसा उसने कहा"। इति

इस प्रमाण से यह निर्णय होता है कि वीरात् ३७३ वर्ष अर्थात् महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा के बाद ३०३ वर्षों यह घटना हुई उसी समय से उपकेशपुर निवासी अन्य प्रान्त में गये हो और उनको अन्य प्रान्त वाले उपकेशी–उपकेशवंशी कहने लगे हो तो वह सम्भव ही है।

एक दूसरा भी प्रमाण मिलता है कि उपकेशपुर के पास मीठे पानी की नहर चलती थी जिससे इस नगर के आस पास की जमीन से प्रचुरता से माल पैदा होता था गुल पीसने की चक्कियां तो यत्र तत्र आज भी दृष्टि गोचर होती है और भूमि के खोद काम के अन्दर बड़ी बड़ी काया वाले मांछलों के कलेवर भी मिलते हैं।

पहिले जमने में एक प्रदेश का माल दूसरे प्रदेश में पहुँचाने का मुख्य साधन बणजारों के पोठ (बहलों की बालदों) ही थे बलदों द्वारा प्रचूर माल का आना जाना होता था पर उपकेशपुर की नहर के कारण बणजारों को बहुत धक्का खाकर आना जाना पड़ता था कई बणजारों ने तो इस नहर को दूर ले जाने के लिये भरती डालने की कोशीश भी की पर वे इस कार्य में सम्पूर्ण सफलता न पासके फिर एक हेम नामका बणजारा जिसके पास एक लक्ष बलदों का पोठ था उसने नहर को भरती से पूर दी–इस विषय में एक पुराणी कहावत भी है कि—

"लाखा सरीखा लख गये, आदु सरीखा अठ।
'हेम' हडाउ न आवसी, वलके ईण ही ज वठ॥

यदि यह बात किसी अंश में सत्य है तो मानना पड़ेगा कि नहर

के अभाव से उपकेशपुर का व्यापार कम हुआ हो और वहां के निवासी अन्य स्थान में जाकर वसे हों और यहां के लोग उनको उपकेश-वंशी कहने लग गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

पूर्वोक्त दोनों प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि उपकेशपुर में महाजन संघ की स्थापना होने के बाद तीन चार शताब्दी तक तो महाजन संघ की खूब वृद्धि हुई बाद कई लोगों ने पूर्वोक्त कारणों से उपकेशपुर का त्याग कर अन्य प्रदेश में जाकर वास किया हो और वे वहां के लोगों द्वारा उपकेशवंशी कहलाये हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है तात्पर्य यह है कि महाजनवंश का उपनाम उपकेशवंश का होना विक्रम की पहली शताब्दी के आस पास का समय होना चाहिये।

८—माहेश्वरी-वंश-कल्पद्रुम नाम की पुस्तक में माहेश्वरी लोगों की उत्पत्ति विक्रम की पहिली शताब्दी में होनी लिखते हैं। इसके पहिले उपकेशवंश का विद्यमान होना कई प्रमाणों से प्रमाणित है।

९—भाट भोजक और कुल गुरुओंकी वंशावलियों में ओसवालों की उत्पत्ति का समय वि० सं० २२२ का लिखा मिलता है। पर जांच करने से यह पता चलता है कि उसी समय आभापुरी से देशल का पुत्र जगशाह उपकेशपुर में महावीर की यात्रा और सच्चिया देवी के दर्शनार्थ आया था, उस समय भोजकों को एक करोड़ रुपयों का दान दिया था। उसी समय से वे शायद ओसवालों की उत्पत्ति का समय २२२ में कहते हों तो कोई असम्भव नहीं। इस विषय के कुछ प्राचीन कवित्त भी मिले हैं जो पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे दिये जाते हैं:—

"आभा नगरी थी आव्यो, जग्गो जग में भाण।
साचल परचो जब दियो, तब शीश चढ़ाई आण॥
जुग जीमाड्यो जुगत सु, दीधो दान प्रमाण।
देशल सुत जग दीपतां, ज्यारी दुनिया माने कांण॥

\+ + +

चूप धरी चित भूप, सेना लई अगल चाले।
अरबपति अपार, खडबपति मिलीया माले॥
देरासर बहु साथ, खरच सामो कौण भाले।

घन गरजे वरसे नहीं, जगो जुग वरसे अकाले ।
यति सती साथे घणा, राजा राणा बड़ भूप ॥
बोले भाट विरुदावली, चारण कविता चूप ।
मिलीया सेवग सांमटा, पूरे संक्ख अनूप ॥
जग जस लीनो दान दे, यो जग्गो संघपति भूप ।
दान दियी लख गाय, लख वलि तुरंग तेजाला ॥
सोनो सौ मण सात, सहस मोतियन की माला ।
रूपा नो नहीं पार, सहस करहा कर माला ॥
बीये बावीस भल जागियो, यो ओसवाल भूपाला ।

यह कवित्त यद्यपि इतना प्राचीन तो नहीं है कि जिसे हम ऐतिहासिक क्षेत्र में स्थान दे सके, तथापि यह बिलकुल निराधार भी नहीं है। कारण जगशाह का समय वि० सं० २२२ का बतलाया है तब महाजन वंश की स्थापना वि० सं० पूर्व ४०० वर्षों में हुँई, इसके बीच ६२२ वर्ष का समय पड़ता है। इतने समय में उपकेशवंशी लोग आभा नगरी तक पहुँच गये हो और सच्चिया देवी के परचा को पा कर यात्रार्थ उपकेशपुर आए हों और इस तरह दान दिया हो यह कोई असंगत नहीं जान पड़ता। क्योंकि "उपकेशे बहुलं द्रव्यं' इस बरदान से उपकेशवंश महा समृद्ध था, और हमारे उपकेशवंशीय एक एक व्यक्तिने संघ निकाल के प्रत्येक व्यक्ति को एक एक सोने के थाल की प्रभावना दी ऐसे अनेकों उल्लेख मिलते हैं। अतः इसको लक्ष्य में रखते हुये जगशाह का इतना दान देना भी युक्ति युक्त ही है। आज भी यदि एकएक राष्ट्र के पास ७००० टन सोना है तो पूर्व जमाना में जहां रत्नों का भी बाहुल्य था वहां सोना किस गिनती में है। इस प्रमाण से वि० सं० २२२ पूर्व भी उपकेश वंश का अस्तित्व सिद्ध होता है।

१०—विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छाचार्य श्री यक्षदेवसूरि सोपरपटन में बिराजते थे। उस समय वज्र स्वामी के पट्टधर वज्रसेनाचार्य ने अपने चार शिष्यों को दीक्षा दे सपरिवार सोपार पटण

यक्षदेवसूरि के पास ज्ञानाभ्यास के लिये आये और शिष्यों का ज्ञानाभ्यास करवाने लगे। बीच में अकस्मात् आचार्य वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास हो गया। बाद उन चारों शिष्यों को १२ वर्ष तक ज्ञानाभ्यास करा, उनका (चारों शिष्यों का) भी शिष्य समुदाय जब विशाल हो गया तो उन चारों को आचार्य यक्षदेवसूरि ने वासक्षेप और विधि पूर्वक सूरि पदार्पण कर वहां से विहार कराया। अनन्तर उन चारों के नाम से अलग अलग चार शाखाएँ हुईं, यथाः—

(१) नागेन्द्र मुनि से नागेन्द्रशाखा, जिसमें उदयप्रभ और मल्लिसेनसूरि आदि महाप्रभाविक आचार्यों ने शासन की उन्नति की।

(२) चन्द्र मुनि से चन्द्रशाखा—जिसमें वड़गच्छ, तपागच्छ, और खरतरादि अनेक शाखाओं में बड़े बड़े दिग्विजयी आचार्य हुए।

(३) निवृत्ति मुनि से निवृत्तिशाखा—जिसमें शेलांगाचार्य दूणाचार्यादि महा पुरुष हुए, जिन्होंने जैन साहित्य की उन्नति की।

(४) विद्याधर मुनि से विद्याधरशाखा—जिसमें हरिभद्र सूरि जैसे १४४४ ग्रन्थों के रचयिता हुए। यह कथन उपकेशगच्छ प्राचीन पट्टावली है और आचार्य श्री विजयानन्दसूरिजी ने अपने जैनधर्म प्रश्नोत्तर में नाम के ग्रन्थ में भी लिखा है। इस से यह सिद्ध होता है कि उस समय उपकेशगच्छ अपनी अच्छी उन्नति पर था तो उपकेशवंश जाति का प्रादुर्भाव इससे पहिले होना स्वतः सिद्ध है।

"एवं अनुक्रमेण श्री वीरात् ५८५ वर्षे श्रीयक्षदेवसूरि र्बभूव महाप्रभावकर्त्ता, द्वादशवर्षे (वार्षिके) दुर्भिक्षमध्ये वज्र-स्वामी शिष्य वज्रसेनस्य गुरौ परलोक प्राप्ते यक्षदेव सूरिणा चतस्रः शाखाः स्थापिताः"

"उपकेशगच्छ पट्टावलि"

भावार्थः—श्री वीर के निर्वाण काल से ५८५ वर्ष बीतने पर महा-प्रभाववान् श्री यक्षदेवसूरि आचार्य हुए उस समय दैव वश बारह वर्ष का अकाल पड़ने पर वज्रस्वामी के शिष्य श्री वज्रसेनगुरुजी के पर-लोक प्रयाण करने पर श्री यक्षदेवसूरि ने चार शाखाऐं स्थापित कीं चार शाखाऐंः—चन्द्रशाखा, नागेन्द्रशाखा, निवृत्तिशाखा, और

विद्याधरशाखा जिन में तपागच्छ और खरतरगच्छ आदि चन्द्र कुल में है।

तथाच :—

तदन्वये यक्षदेवसूरि, रासीद्धियां निधिः ॥
दशपूर्वधरोवज्रस्वामी, भुव्यभवद् यथा ॥२३१॥
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणी ॥
वर्तमानेऽनाशकेन, स्वर्गेऽगुर्बहुसाधवः ॥२३२॥
ततो व्यतीते दुर्भिक्षे, चावशिष्टेषु साधुषु ॥
मिलितेषु यक्षदेवाचार्या, श्चन्द्रगणेऽमिलन् ॥२३३॥

अर्थः—उस उपकेशगच्छ में श्री यक्षदेवसूरि दशं पूर्व-धर वज्र-स्वामी के सदृश बुद्धि के सागर इस भूतल पर हुए। एक समय द्वादश वार्षिक अकाल पड़ने पर बहुतजन संहार हुआ और अनेक साधु भोजनाऽभाव से स्वर्गलोक को चले गये। अनन्तर उस दुर्भिक्ष के मिटने पर और मरने से बचे साधुओं के एक स्थान में इकट्ठा होने पर श्री यक्षदेवाचार्यसूरि ने चन्द्रगणादि की स्थापना की।

१०—आचार्य श्री विजयानन्द सूरि ने अपने जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर नामक ग्रंथ में लिखा है कि श्रीदेवऋद्धि गणी क्षमाश्रमणजी ने उपकेशगच्छाचार्य देवगुप्तसूरि के पास एक पूर्व सार्थ और आधा पूर्व मूल एवं डेढ़ पूर्व का अभ्यास किया था। इसका समय विक्रम की छटीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का है। यही बात उपकेश गच्छ पट्टावली में लिखी है। इससे यह सिद्ध होता है कि छठी सदी में उपकेशगच्छाचार्य मौजूद थे तो उपकेश जाति तो इनके पहिले अच्छी उन्नति और आबादी पर होनी चाहिए।

११—इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी जोधपुर वाले ने राजपूताना की शोध (खोज) करते हुए जो कुछ प्राचीन सामग्री उपलब्ध की उसके आधार पर एक "राजपूताना की शोध खोज" नामक पुस्तक लिखी, जिसमें लिखा है कि "कोटा राज के अटारू नामक ग्राम में एक जैन मन्दिर जो खण्डहर रूप में विद्यमान है, जिसमें एक मूर्ति के नीचे वि० सं० ५०८ भैशाशाह के नाम का शिलालेख है उन

भैशाशाह का परिचय देते हुए मुंशीजी ने लिखा है कि भैशाशाह के और रोड़ा विणजारा के साथ में व्यापार सम्बन्ध ही नहीं पर आपस में इतना प्रेम भी था कि दोनों का प्रेम चिरकाल तक स्मरणीय रहे इस लिहाजसे भैशा-रोड़ा इन दोनों के नाम पर "भैशरोड़ा" नाम का एक ग्राम वसाया वह आज भी मेवाड़ प्रान्त में मौजूद है। जैन समाज मे भैशाशाह ? बड़ा भारी प्रख्यात है। वह उपकेश जाति आदित्यनाग गोत्र का महाजन था। जब वि० सं० ५०८ पहिले भी उपकेश जाति ने व्यापार में अच्छी उन्नति करली थी तो वह जाति कितनी प्राचीन होनी चाहिए, इसके लिये पाठक स्वयं विचार करें।*

१२—खेतहूणों के विषय में इतिहासकारों का यह मत है कि खेतहूण तोरमोण, पंजाब से विक्रम की छट्ठी शताब्दी में मरुस्थल की ओर आया, और मारवाड़ के ऐतिहासिक स्थान भिन्नमाल को अपने हस्तगत कर अपनी राजधानी बनाया। जैनाचार्य हरिगुप्तसूरि ने उस तोरमाण को धर्मोपदेश दे जैन धर्म का अनुरागी बनाया, जिसके फल स्वरूप तोरमाण ने भिन्नमाल में भगवान् ऋषभदेव का विशाल मन्दिर बनाया, बाद तोरमाण के उसका पुत्र मिहिरगुल कट्टर शिवधर्मोपासक हुआ, उसके हाथ में राजतंत्र आते ही जैनों के दिन बदल गए। जैन मन्दिर बलात् तोड़े जाने लगे और जैनों पर इतना अत्याचार होने लगा कि जैनों को सिवाय उस समय देश-त्याग के अपनी मुक्ति का और कोई साधन नहीं सूझा। मजबूर हो वे मारवाड़ छोड़ लाट (गुजरात) देश की तरफ चल पड़े। उपकेश जाति व्यापारिक-वर्ग में तो आदि से ही अग्रसर थी अतः वहाँ का व्यापार अपने अधीन किया। आज जो लाट (गुजरात) देश में जो उपकेश जाति निवास करती है वह विक्रम की छट्ठी शताब्दी में मारवाड़ से गई हुई है, और वहाँ जो इस जाति के लोगों ने मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा कराई, जिनके शिलालेखों में

नोटः—(१) उपकेश जाति में भैशाशाह नाम के तीन पुरुष हुए हैं। १ एक तो प्रस्तुत शिलालेख वाला छठी शताब्दी में। २ डीड़वाना और भीनमाल निवासी भैशाशाह जो विक्रम की बारहवीं शताब्दी में और ३ नागोर में ऋषभदेव की मन्दिर-मूर्त्ति का निर्माण कराने वाला विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में

भी उपकेश वंश और उपकेश जाति दृष्टि गोचर होती है। (कुवलय माला कथा से) अतः इस प्रमाण से विक्रम की पाँचवी छट्ठी शताब्दी के पहिले भी उपकेश जाति अत्युन्नति पर थी यह सिद्ध होता है।

१३—वल्लभी नगर का भङ्ग कराने में जो कांगसी वाली कथा को इतिहासकारों ने स्वीकार किया है वे सेठ दूसरे नहीं, पर उपकेश जाति बलहा गोत्र के रांकाबांका नाम के थे। और उनकी संतान भी रांका-बांका जातियों के नाम से मशहूर है।

१४—श्री रत्नविजयजी महाराज की शोध खोज से ओशियों के ध्वंशाऽवशेष मन्दिर में वि० सं० ६०२ का टूटा हुआ एक शिलालेख मिला है। उसमें "आदित्यनाग गोत्र वालों ने वह चन्द्रप्रभु की मूर्त्ति बनाई थी" यह लिखा है इससे भी यह सिद्ध होता है कि उस समय उपकेश जाति अच्छी तरक्की पर थी।

१५—आचार्य हरिभद्र सूरि आदि आठ आचार्यों ने इकट्ठा होके "महानिशीथ" सूत्र का उद्धार किया। जिसमें उपकेशगच्छाचार्य देवगुप्त सूरि भी शामिल थे। इस समय से पहिले जब उपकेशगच्छ भी मौजूद था। तब उपकेश जाति ने उसके भी पहिले अच्छी उन्नति की होगी यह तो निःशङ्क है। तद्यथाः—

"अचिंत चिंतामणि कप्प भूयस्स महानिसीह सुयस्कंधस्स पुव्वाइंरास असितह चेव खंडिए उद्देहियाइ एहिं हेउहिं बहवे पतंगा परिसाडिया तह वि अचंत सुमच्छाह सयंति इमं महा-निसीह सूयस्कंध किसिणं पवयणस्स परमाहार भूयं परंततं महच्छंति कविउणं पवयण वच्छलतेणं बहुभव संतोवियारियं च काउ तहाय आयरियं अठयाए आयरिय हरिभद्देण[१] जं तत्था यरि से हिठंतं सचं समती एसा हिऊणं लिहियंति अन्नेहिपि सिद्धसेण[२], बुढ्ढवाई[३], जक्खसेण[४], देवगुत्ते[५] जस्स भद्देणं खमासमण सीस रविगुत्त[६] सोमचंद[७], जिणदास–गणि खमग सवसूरि पमुहे हि जुगप्पहाण[८]"

"महानिशीथ सूत्र अ० दूसरा हस्तलिखित प्रति पाने ७२-१

१६—पं० हीरालाल हंसराज ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथ "जैन गोत्र संग्रह" नामक पुस्तक में लिखा है कि भीन्नमाल के राजा भांण ने उपकेशपुर के रत्नाशाह की पुत्री के साथ लग्न किया था, और राजा भांण का समय वि० सं० ७७५ का है और इसके पहिले उपकेस वंश खूब विस्तार पा चुका था। यह सिद्ध होता है।

१७—पं० हीरालाल हंसराज ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ "जैन गोत्र संग्रह" में भिन्नमाल के राजा भांण के संघ के समय वासक्षेप की तकरार होने से वि० सं० ७७५ में बहुत से गच्छों के आचार्यों ने संमिलित हो यह मर्यादा, बांधी कि भविष्य में जिसके प्रतिबोधित जो श्रावक हो वे ही वासक्षेप देवें। इस कार्य में निम्नलिखित आचार्यों ने सहमत हो अपने हस्ताक्षर भी किए थे।

नागेन्द्र गच्छीय—सोम प्रभसूरि।
उपकेश गच्छीय—सिद्ध सूरि।
निवृत्ति गच्छीय—महेन्द्र सूरि।
विद्याधर गच्छीय—हरियानन्द सूरि।
ब्राह्मण गच्छीय—जज्जग सूरि।
(वा) साडरा गच्छीय—ईश्वर सूरि।
वृद्ध गच्छीय—उदय प्रभ सूरि।

इत्यादि बहुत से आचार्यों ने अपनी सम्मति दी थी। इससे भी यह पुष्ट होता है कि इस समय के पहिले उपकेशगच्छ के आचार्यों ने अपनी अच्छी उन्नति की थी। तब यह जाति इनसे पूर्व बनी हुई और विशाल हो इसमें क्या सन्देह है?।

१८—ओशियों मन्दिर की प्रशस्ति के शिलालेख में उपकेशपुर के पड़िहार राजाओं में वत्सराज की बहुत प्रशंसा लिखी है। जिसका समय वि० सं० ७८३ या ८४ का है। इससे भी यही प्रकट होता है कि उस वख्त उपकेशपुर की भारी उन्नति थी। इससे आबू के उत्पल देव पँवार ने ओंशियों बसाई यह भ्रम भी दूर हो जाता है।

१९—वि० सं० ८०२ में पाटण (अणहिलवाड़ा) की स्थापना के समय चंद्रावली और भीनमाल से उपकेशवंश, पोरवाल और श्रीमाल

जाति के बहुत से लोगों को आमन्त्रण पूर्वक पाटण में बसने के लिये लेगए, अनन्तर मारवाड़ के उनके कुलगुरू वहाँ जाकर उनकी शाखलियों लिखने लगे। उन उपकेशादि जैनियों की संतान आज भी वहाँ निवास करती है, और जिनके बनाए मन्दिर आदि अब भी मौजूद है। देखो ! उनकी वंशावलियों (खुर्शीनामा)—

२०—जैनाचार्य बप्पभट्टसूरि जैन संसार में बड़े ही प्रभावशाली एवं प्रख्यात हुए हैं आप श्री ने कन्नौज (गवालियर) के राजा नागावलोक वा नाग भट्ट प्रतिहार (आमराजा) को प्रतिबोध कर जैनी बनाया उस राजा के एक रानी व्यवहारिया (वणिक) की पुत्री थी इससे होने वाली सन्तान को इन आचार्य ने विशद एवं विशाल ओसवंश में मिला दिया उन्होंने राज कोठार का काम किया जिससे उनका गोत्र राज कोष्ठागार हुआ। इसी गोत्र में आगे चलकर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में स्वनाम धन्य एवं प्रसिद्ध पुरुष कर्म्माशाह हुए जिन्होंने श्री शत्रुंजय तीर्थ का अन्तिम जीर्णोद्धार करवाया इसका शिलालेख वि० सं० १५८७ का खुदा हुआ शत्रुंजय तीर्थ की विमल वसी में विद्यमान हैं इस लेख में निम्नलिखित दो श्लोक यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं।

एतश्च गोपाद्रिगिरौ गरिष्ठः श्री बप्पभट्टी प्रतिबोधितश्च ।
श्री आमराजोऽजनि तस्यपत्नी काचित् बभूव व्यवहारिपुत्री ॥
तत्कुक्षि जाताः किल राज कोष्टागाराह्व गोत्रेसु कृतैक पात्रे ।
श्री ओसवंसे विशदे विशाले तस्यान्वयेऽमीपुरुषाः प्रसिद्धाः ॥

आचार्य बप्पभट्टसूरि का समय वि० सं० ८०० के आस पास का है इसमें पता चलाता है कि ओसवाल जाति उस समय विशद एवं विशाल क्षेत्र में फेली हुई थी और इसका इतना प्रभाव था कि जिसको पैदा करने में कई शताब्दीयों के समय की आवश्यक्ता रहती है। यह प्रमाण ओसवंश की कितनी प्राचीनता बतला रहा है पाठक स्वयं बिचार करें।

इन प्रमाणों के अलावा शिलालेख या दशवीं ग्यारहवीं सदी के बने ग्रन्थों में भी प्रचुरता से प्रमाण मिलते हैं और वे खुब प्रसिद्ध भी है। अब हम आधुनिक आचार्यों आदि की मान्यता के कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं।

२१—जैनाचार्य श्री विजयानन्दसूरि (आत्मारामजी) अपने "जैन धर्म विषय प्रश्नोत्तर" नाम के ग्रन्थ में लिखते हैं कि पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में ओसवाल बनाये जिनका समय श्रीवीर से ७० वर्ष बाद का है।

२२—जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरि ने अपने एक लेख में लिखा है कि सब से पहिले आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसा नगरी में वीरात् ७० वर्षे ओसवाल बनाये।

२३—जैनाचार्य श्री बुद्धिसागरसूरिने अपने "गच्छमत प्रबन्ध नाम के ग्रन्थ में लिखा है कि उपकेश गच्छ सब गच्छों में प्राचीन है इस गच्छ के आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७० वर्षे ऊकेशानगरी में ऊकेश (ओसवाल) वंश की स्थापना की।

२४—जैन धर्म का इतिहास जो 'जैन धर्म प्रसारक सभा भाव नगर से प्रकाशित हुआ है उसमें लिखा है कि वीर से ७० वर्षों बाद उकेश नगर में आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बनाये।

२५—पन्यास ललितविजयजी ने "आबू मन्दिरों का निर्माण" नाम की किताब में लिखा है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७० वर्षे उकेश नगर में उकेश वंश की स्थापना की।

२६—पं० हीरालाल, हंसराज अपने "जैन गोत्र संग्रह" नाम के ग्रंथ में लिखते हैं कि वीरसे ७० वर्ष बाद पार्श्वनाथके छट्ठे पाट आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उकेश नगर में उकेश वंश की स्थापना की।

२७—खरतर गच्छीय मुनि चिदानन्दजी ने अपने "स्याद्वादाऽनुभव" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओशा नगरी में ओसवाल वंश की स्थापना की।

२८—खरतर गच्छीय यति श्रीपालजी ने अपने जैन सम्प्रदाय शिक्षा नामक ग्रन्थ में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उकेशपुर में उकेशवंश की स्थापना की।

२९—खरतर गच्छीय यति रामलालजीं ने अपने महाजन वंश मुक्तावलि नामक पुस्तक में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बनाए।

३०—साक्षर श्री शान्तिविजयजी ने अपने "जैन मत पताका" नाम ग्रंथ में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बनाये।

३१—पं० हीरालाल हंसराज ने अपने "जैन इतिहास" नामक ग्रंथ में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे ओसा नगरी में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बनाये।

३२—प्रो० मणिलाल बकोर भाई सुरत वाला ने अपने "श्री मालवाणियों ना ज्ञात भेद" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि विक्रम पूर्व ४०० वर्षे उएस-उकेश वंश की स्थापना आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई। (लेखक महोदय ने तो विस्तृत प्रमाणों द्वारा यह भी सिद्ध कर दिया है कि श्रीमाल टूट के ही उपकेशपुर बसा है)

३३—परम योगिराज मुनि श्री रत्न विजयजी महाराज बहुत शोध खोज के पश्चात् इस निर्णय पर आए हैं कि वीरात् ७० वर्षे ओशियों नगरी में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओश वंश की स्थापना की।

३४—व्या० वा० यतीन्द्र विजयजी महाराज ने "कोरंटा तीर्थ का इतिहास" नाम के ग्रन्थ में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में उपकेशवंश की स्थापना कराके वहां महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा की और उसी समय कोरंटपुर में भी महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा आप श्री ने करवाई।

३५—"एरिनपुरा की छावनी से ३ कोश के लगभग कोरंट नाम का नगर उजड पड़ा है। जिस जगह कोरंटा नाम से आजकल गाँव बसता है वहाँ भी श्री महावीरजी की प्रतिमा मन्दिर की श्री रत्नप्रभसूरिजी की प्रतिष्ठा कराई हुई अब विद्यमान काल में सो मन्दिर खड़ा है।"

जैन धर्म विषयक प्रश्नोतर के पृष्ठ ८१ में (आत्मारामजी म०)

३६—"उएस या ओसवंश के मूल संस्थापक यही रत्नप्रभसूरिजी थे इन्होने ओसवंश की स्थापना महावीर के निर्वाण से ७० वर्ष बाद उकेश (वर्त्तमान ओसियां) नगर में की थी। आधुनिक कतिपय कुलगुरु कहा करते हैं कि रत्नप्रभाचार्यजी ने बीये बावीसे (२२२) में ओसवाल

बनाए यह कथन कपोल कल्पित है, इसमें सत्यांश बिलकुल नहीं है। जैन पट्टावली और जैन ग्रंथों में आसवंश स्थापना का समय महावीर निर्वाण से ७० वर्ष बाद ही लिखा मिलता है जो वास्तविक मालूम होता है"।

"आबू जैन मन्दिरों के निर्माता पृष्ट २–४"

३७—तपागच्छीय प्राचीन पट्टावली में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसा नगरी में ओसवंश की स्थापना की।

३८—अंचलगच्छ पट्टावली में उल्लेख मिलता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीर से ७० वर्ष उकेशपुर में उकेशवंश की स्थापना की।

३९—कोरंटगच्छ पट्टावली में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने आएस नगरी में ओसवाल बनाए।

४०—खरतर गच्छ पट्टावली में लिखा है कि ओशियों नगरी में वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बनाए।

४१—नागपुरिया तपागच्छ पट्टावली में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में उपकेशवंश की स्थापना की।

४२—उपकेश गच्छ पट्टावली में विस्तृत रूप से लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने महाजन संघ की स्थापना की।

४३—कुलगुरुओं की प्रामाणिक वंशावलियों में यह लिखा मिलता है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में क्षत्रियादि अजैनों को जैन बनाके महाजन सङ्घ की स्थापना की, आगे चलकर उन्हीं का नाम उपकेशवंश और ओसवाल हुआ है।

४४—वर्त्तमान समय की पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं और इनमें जो ओसवाल जाति की उत्पत्ति विषयक लेख निकलते हैं उन सब में यही उल्लेख मिलता है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महाजन वंश की स्थापना की जिन्हें आज हम ओसवाल कहते हैं।

इस तरह पूर्वोक्त प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रमाणों से मैंने उपकेशवंश (ओसवाल) की उत्पत्ति का समय वीरात् ७० वर्षे अर्थात् विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व का निर्णय किया है और मेरे इन निर्णय में यदि कोई

त्रुटि रह गई भी हो, (यह संभव है) फिर भी जबतक इसके विपक्ष में कोई युक्त युक्ति प्रमाण नहीं मिले तब तक इन प्रमाणों को मानना न्याय सङ्गत ही है ।

यदि ओसवाल समाज के विद्वान लोग संशोधक तथा नवयुवक इस विषय का विशेष ऊहापोह एवं अन्वेषण करेंगे तो ओसवाल जाति की प्राचीनता सिद्ध करने वाले कई एक ऐतिहासिक प्रमाण मिलने मुश्किल नहीं है ।

प्रत्येक जातिएँ अपनी२ प्राचीनता की शोध में भरसक प्रयत्न कर रही हैं किन्तु भारत में एक ओसवाल जाति ही ऐसी है जो अपनी जाति की उत्पत्ति व उत्थान के लिये कानों में तेल डाल कुंभकर्णी निद्रा में सो रही है । परन्तु वीरों ! उठो ! अब सोने का समय नहीं है जागो ! और सावधान होकर अपना जीवन जाति की सेवा में अर्पण कर दो यही आपका जाति के साथ उपकार और अक्षय कल्याण है ।

इत्यलम्

"अपूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ रत्न"

जैन जाति महोदय

(प्रथम खण्ड)

इस ग्रन्थ को तैय्यार करवाने में बड़ा ही परिश्रम एवं शोध खोज करने में द्रव्य और समय व्यय करना पड़ा है। चौवीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्त्ति आदि महापुरुषों का इतिहास, ओसवाल, पोरवाल, श्रीमालादि जातियों की उत्पत्ति और अभ्युदय। महाराजा श्रेणिक, कोणिक, उदायी, नौनन्द, मौर्य्य, मुगल सम्राट् चन्द्रगुप्त; बिन्दुसार, आशोक और सम्राट् सम्प्रति का विस्तृत इतिहास। कलिंगपति सहामेघवहान, चक्रवर्ति, खारबेल और इनके पूर्ववर्ति कलिंगपतियों का गौरवपूर्ण इतिहास। श्री पार्श्वनाथ एवं महावीर के परम्परा आचार्यों का विस्तृत वर्णन। पूर्व पंजाब, मरुधर, सिन्ध, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि भारत के प्रत्येक प्रान्त व भारत के बाहर किस समय किस आचार्य द्वारा जैनधर्म का किस प्रकार प्रचार हुआ था। जैन जातियों के नररत्न देश, समाज एवं धर्म की किस प्रकार सेवा बजाके अपनी धवलकीर्ति को अमर बना गये इत्यादि अनेक विषयों पर प्रकाश डालने वाले [illegible] और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाऐं संग्रह कर आप श्रीमानों की [illegible] में अर्पण किया है उम्मेद है कि आप इसको आद्योपान्त पढ़के अवश्य लाभ उठावेंगे। पृष्ठ संख्या १००० से अधिक, सुन्दर चित्र ४३, [illegible] टाइप, सुन्दर छपाई, रेशमी जिल्द होनेपर भी मूल्य नाम मात्र रु० ४)

पोरवाल पंच

[illegible]न भंडार

[illegible]ल (राज०)

पता { श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला
मु० फलौदी (मारवाड़)

नोट—किश्चियन धर्म का बाईबिल, आर्य समाजियों का सत्यार्थप्रकाश, ग्रन्थों की कई आवृतियाँ एवं लाखों पुस्तकें वितीर्ण हो चुकी हैं जब कि जैनधर्म के तत्वज्ञान या ऐतिहासिक विषयक ग्रन्थों की शायद ही दूसरी आवृति प्रकाशित हुई हो। इसका क्या कारण है? स्वयं विचार कर लीजिये?